"कन्याप्येवं पालनीया रक्षणीयाति यत्नतः ।"

ऐतिहासिक स्त्रियां ।

आठ प्रसिद्ध ऐतिहासिक सतियों और देवियों के शिक्षाप्रद जीवनचरित ।

सम्पादक—

आरा-निवासी कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन ।

वीर निर्वाण संवत् २४३८ ईसवी सन् १९१२ ।

 [मूल्य ॥) मयडाक

मातृ-चरणोंमें ।

सम्मति।

मुझे बहुत हर्ष है कि मेरे प्रिय मित्र देवेन्द्रप्रसादजीने इस ऐतिहासिक स्त्रियाँ नामक उत्तम पुस्तकको लिखकर एक बड़ी भारी आवश्यकताकी पूर्त्ति की है। मैंने इस पुस्तकको पढ़ा और इसे स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये उपयोगी पाया। इससे भारतवर्षकी प्राचीन देवियों और पुण्यकीर्त्ति महिलाओंकी शीलता, पातिव्रत, वीरता आदिकी झलक दिखाई देती है जिनके पाठसे पाठकों और पाठिकाओंको अवश्य आनन्दके साथ साथ शिक्षा भी प्राप्त होगी। मेरी इच्छा है कि यह पुस्तक जैनकन्यापाठशालाओंकी पाठ्यपुस्तकोंमें सम्मिलित अवश्य की जाय। आशा है कि इसके सम्पादक और भी ऐसी पुस्तकें लिखकर हम लोगोंको आभारी करेंगे।

निवेदक,

जे० एल० जैनी, एम० ए०

बार-ऐट-ला, एडवोकेट,

इलाहाबाद।

अवतरण।
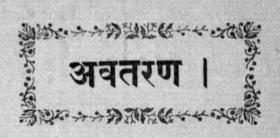
प्रिय पाठक एवं पाठिका वर्ग।

महात्माओं और पुण्यात्मा देवियोंकी जीवनी पढ़नेसेही इस संसारमें मनुष्यकी सभी उन्नतियाँ हो सकती हैं। जिस किसी जाति या समाजने इस जगत्में सुख सौभाग्य प्राप्त किया है उसने अपने देशके महान् पुरुष और स्त्रियोंकेही पुण्य चरित्रोंका अनुकरण करके प्राप्त किया है। किन्तु खेदकी बात है कि ऐसी ऐसी पुस्तकोंका हिन्दीमें बड़ाही अभाव है विशेषतः स्त्रियोंके पढ़ने और अनुकरण करने योग्य पुस्तकें तो बहुत ही थोड़ी हैं इसी कारण उस अभावको यत्किञ्चित् पूरा करनेके लिये हमने यह उद्योग किया है। आशा है कि इससे हमारी कन्याएँ और भगिनीगण लाभ उठावेंगी। जिस उद्देश्यसे यह किताब लिखी गयी है वह यदि कुछ अंशमें पूरा हुआ तो उसे हम अपना परमसौभाग्य समझेंगे और उत्साहित होकर दूसरी भी पुस्तक इसी ढँगकी आठ अन्य पुण्यात्मा महिलाओंकी जीवनी समेत लेकर सेवामें

उपस्थित होंगी। इस पुस्तकमें इस बातका पूरा पूरा ध्यान रखा गया है कि यह जैनकन्या पाठशालाओं और श्राविकाश्रमोंमें पढ़ायी जाने योग्य होवे इसीसे इसमें जीवनियाँ ऐसी दी गयी हैं जो कि ऐतिहासिक और शिक्षाप्रद हैं।

अन्तमें हम बाबूपन्नालालजी चौधरी, पण्डित दीपचन्दजी और तुलसीरामजीको धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इसे तैयार करनेमें हमारी सहायता की है।

जिसमें हमारी इस पुस्तक से सभी हमारी बहिनों और माताओंको लाभ हो इसलिए हमने निश्चय किया है कि असमर्थ बालिकाओं एवं स्त्रियोंको पत्र लिखनेसे ही बिना मूल्य और बिना डाक व्ययके पुस्तक भेज देंगे।

इस पुस्तकसे जो कुछ भी मूल्य प्राप्त होगा वह स्त्रीशिक्षा के ही प्रचार में लगा दिया जायगा।

आरा।
१—५—१९१३

सविनय—
देवेन्द्रप्रसाद जैन।

(१) श्रीमती राजुलदेवी (राजमती) ... १
(२) श्रीमती सीताजी ७
(३) महारानी चेलनादेवी ३०
(४) महारानी मैना सुन्दरी ३८
(५) वीरानारी रानी द्रौपदी ४८
(६) श्रीमती रानी अञ्जना सुन्दरी ५८
(७) शीलवती मनोरमा देवी ७०
(८) श्रीमती रानी रयन मंजूषा ... ... ८०—९०

पातिव्रत धर्मका आदर्श ।

ताहि न बाघ भुजंगमको भय,
पानी न बोरै न पावक जालै ।
ताके समीप रहैं सुर किन्नर,
सो शुभ रीत करै अघ टालै ।
तासु विवेक बढ़ै घट अन्तर,
सो सुरके शिवके सुख भालै ।
ताकि सुकीरति होय तिहूँ जग,
जो नर शील अखण्डित पालै ।

बनारसी विलास ।

सरस्वती.

चित्रशाळा प्रेस, पुणें.

ऐतिहासिक स्त्रियां।

"वैरागिणी-रमणी-रत्न"

श्रीमतीराजुल देवी।

(राजमती)

"धन धन्य महिलारत्न राजुल, युवा वय में तपधरा।
भव वास के सब भोगतज, निर्वाण सुख में चितधरा॥
गिरनार के उस आम्रवन में ध्यानमय आसन धरा।
उच्च पातिव्रत दिखाकर, सुयश से जग मल हरा॥"

श्री राजमती भोजवंशीय राजा उग्रसेनकी कुमारी थीं, छोटेपनसे ही इनका लालन पालन बड़ी योग्यतासे हुआ था, अद्भुत गुण और सौन्दर्यके कारण राजकन्या राजमतीकी प्रशंसा यहां तक बढ़ी चढ़ी थी कि इनके पिताको

इनके लिये वर खोजनेमें कुछ भी परिश्रम नहीं उठाना पड़ा। अनेक महाराजा इस गृहलक्ष्मीके लिये स्वयं आ आकर याचना करते थे।

सौर्यपुरके यदुवंशीय राजा समुद्र विजय और रानी शिव-देवीके पुत्र बाइसवें तीर्थङ्कर श्रीनेमीनाथ स्वामी जब तरुणा-वस्थाको प्राप्त हुए, तब इनके कुटुम्बियोंने भोजवंशियोंसे श्रीराजमती और श्रीनेमीनाथका सम्बन्ध करनेके लिये संदेशा भेजा। यह सम्बन्ध सबको रुचिकर जँचा और विवाहकी तिथि निश्चित होकर टीका भी चढ़ गया।

श्रीनेमीनाथ स्वामी उस समय सारे भूमण्डलके पुरुषोंमें श्रेष्ठतम पुरुष थे। इनके जन्मके छः महीने पूर्वहीसे माता शिव देवीके यहाँ रत्नोंकी वर्षा हुई थी तथा अनेक देव देवि-योंने सेवा पूजा की थी। भगवान् नेमि प्रभु जन्मसेही मति, श्रुति, और अवधि इन तीन ज्ञानोंके धारी थे तथा अत्यन्त शान्त-चित्तइन्द्रियविजयी परमपराक्रमी थे। ऐसे अद्वितीय गुणयुक्त त्रैलोक्यनाथ पतिके प्राप्त होनेकी आशासे श्रीराजुल देवीके हर्षका पारावार न रहा। यद्यपि अभी विवाह संस्कार पूरा नहीं हुआ था केवल टीका कङ्कण आदि शुभसूचक रीतियाँही हो पाई थीं परन्तु श्रीराजुलदेवी अपने अन्तरङ्गमें निजको सर्व प्रकारसे श्रीनेमीनाथ स्वामीके अर्पण कर चुकी थी।

धीरे धीरे पाणिग्रहणका दिन आया और बड़े ठाठबाटसे बारात लगनेकी तैयारी हुई। इस समय राजुलदेवी महलके

झरोखेपर बैठी बैठी अपने आनेवाले पतिके गुणोंका विचार करके परमहर्षमें मग्न हो रही थीं। परन्तु पाप पुण्यकी लीला बड़ी प्रबल है। इस समय अशुभोदयने राजुलदेवीको कुछका कुछ दिखा दिया और उनके साहसकी भली भाँति परीक्षा की।

विवाहका समय निकट होनेपर श्रीनेमीनाथ स्वामी विशाल रथपर सवार हो अनेक महाराजाओं सहित ससुराल जा रहे थे कि मार्गमें बहुतसे पशुओंको एक बाड़ेमें घिरे रोते चिल्लाते देखा। दीनरक्षक श्रीनेमी कुमारने रथ रुकवाकर इस भयावने दृश्यका कारण सारथीसे पूछा। उत्तरमें यह सुनकर कि "इन पशुओंका माँस बारातमें आये हुए नीच मनुष्योंके लिये पकेगा"। नेमी प्रभुको बड़ी घृणा हुई। फिर उन्होंने अवधि ज्ञान द्वारा विचारकर देखा तो इसका कारण कुछ औरही ज्ञात हुआ। उनको मालूम हो गया कि यह दृश्य उन्हें वैराग्य प्रगट करानेके लिये उनके बड़े भाईने रचा है। सब तरहसे परास्त होकर भावी राजलक्ष्मीके लोभसे श्रीनेमी प्रभु पृथिवीपर रहेंगे तो यही राजा होंगे और यदि मुनि हो जायँगे तो हम राज्य करेंगे, इस अभिप्रायसे यह सब प्रपञ्च श्रीकृष्णजीकाही किया हुआ है।

बस अब क्या था, इस प्रपञ्चको देख श्रीनेमीनाथको सचमुच वैराग्य प्रगट हो गया। वे विचारने लगे कि देखो यह राज्य विभव कैसा बुरा है जिसके लिये बड़े बड़े पुरुष भी

इतना प्रपञ्च रचते हैं। धिक्कार है इन इन्द्रियभोगोंको जो जगत्‌के जीवोंको स्वार्थमें ऐसा अन्धा कर देते हैं। क्षणभंगुर संसार है इसमें आत्महितही सार है इत्यादि इत्यादि बातोंके विचारसे नेमीनाथको परम वैराग्य हो गया। वे बारह भावनाओंका चिन्तवन करने लगे और शिरका मुकट उतारकर पृथिवीपर डाल दिया। कङ्कण तोड़ फेंक दिया, सांसारिक भोगोंसे मुख मोड़ लिया। संसार से उदासी, मोक्ष-लक्ष्मीके अभिलाषी, श्रीनेमीकुमार विवाहारम्भके सम्पूर्ण कार्योंको छोड़ जैनेन्द्री दीक्षा धारण करके गिरनार (जूनागढ़) के पहाड़पर योगाभ्यास करने लगे। सारे विषय भोगोंको छोड़ श्रीराजुलदेवी जैसी पत्नीको त्याग ध्यान ज्ञानमें मग्न हो गये।

इधर महलोंमें स्थित कोमल-चित्ता राजुलदेवीको यह समाचार मिले कि "नेमीनाथने वैराग्य लेलिया"। इन शब्दोंने उस देवीके हृदयरूपी कमलका दहन कर दिया। कहाँ तो वह परमहर्ष और कहाँ यह विपत्तिका पहाड़!

सारे राजमहलमें खलबली मच गई। सब मनुष्योंके मुख-पर शोकही शोक झलकने लगा।

राजुलदेवीको सब कुटुम्बीगण समझाने लगे, सबने चाहा कि इन्हें अन्यान्य भोग सामग्रियोंमें लुभा देवें और श्रीनेमी प्रभुका दुःख भुला दें; परन्तु यह सती ऐसी बुद्धिहीना न थी। राजुलदेवीको उस समय सारा संसार शून्य दीखने लगा, वे

क्षणभर भी वहाँ न टिकीं। समस्त भूषण वसन उतार वैराग्यमें उद्यम करने लगीं, अपने पूर्वकृत कर्मोंके खेलको देख अपनी निन्दा करने लगीं। पाठक पाठिकागणो! राजुलदेवीके सतीत्व और स्वार्थत्यागकी प्रशंसा लेखनीसे नहीं हो सकती। आप लोग स्वयं अन्तरङ्गमें विचार लेंगे।

ये महासती समस्त कुटुम्बियोंसे विदा मांग, जगत् का मोह छोड़, स्वामीके ऐसे वैराग्य धर्मको अङ्गीकार करनेके लिये गिरनार पर्वतपरही चली गईं। वहाँ पहाड़ोंकी भयानक गुफाओंमें अकेली रहकर परम तप करने लगीं। अहा! धन्य है इस सतीको जिसने पतिके सम्बन्धको इतना दृढ़ निबाहा। इसीका नाम है पतिके सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होना! इसीका नाम है पातिव्रत! जो इतने अल्प सम्बन्धित पतिकोही अपना सर्वस्व समझ स्थिर हो गईं, जिस तरह पतिने संसार त्यागा उसी तरह स्वयं भी साध्वी हो गईं।

इधर श्रीनेमीनाथ स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया घातिया कर्मोंके नाशसे निर्मल केवल-ज्ञान-ज्योति ऐसी स्फुरायमान हुई जिसमें तीनों लोक प्रत्यक्ष दीखने लगे। क्षुधा तृषा, भय, खेद, स्वेदादि १८ दोषोंका नाश हो गया, परमात्मअवस्था प्रगट हो गई। यह देख देवोंने समवसरणकी रचना बनाई यानी इतना विशाल सभामण्डप बनाया जिसमें बारह सभा और अनेक ध्वजा, पताका, तोरण आदिसे सजी

बजे और कितनेही स्थान बनाये। इस समवशरणमें चार बड़े विशाल दरवाज़े बने थे, जिनपर अनेक देव देवी गान करते थे। बीचोंबीचमें अत्यन्त उज्ज्वल स्फटिक मणि (ज्योतिसे भी साफ होती है) का सिंहासन तीन कटनियोंपर शोभायमान हो रहा था और उसीपर श्रीनेमी प्रभु अन्तरीक्ष विराजमान थे। इनके चौगिर्द बारह सभायें थीं जिनमें क्रमसे देव देवी मनुष्य (गृहस्थत्यागी मुनि अर्जिका) तिर्यञ्च सब बैठे बैठे धर्मश्रवण करें। भगवान्की दिव्यध्वनि (वाणी) में इतना चमत्कार होता है कि उसको सब जीव अपनी अपनी भाषामें समझ जाते हैं।

श्रीनेमी प्रभुका समवशरण (सभा) अत्यन्त विभूतिके साथ सङ्गठित और सब जगहमें भव्यजीव भगवान्का उपदेश सुनने आये, इस समय श्रीमती राजुलदेवीजी परम अर्जिका छः हजार रानियाँ जो कि सब भगवान्के समवशरणमें अर्जिका हुई थीं उन सबकी गुरुआनी हुईं। सब अर्जिका-ओंको सत्पथ दर्शानेवाली सबोंकी रक्षिका नियत हुई। अर्जिकाओंके समूहमें राजुलदेवीकी छवि अद्भुत प्रकाशमान होती थी।

सर्वत्र धर्मोपदेश कर कुछ दिन बाद श्रीनेमी प्रभुको मोक्ष हो गयी और समाधिमरणकर श्रीराजुलदेवी स्वर्ग-रोहिणी हुई। धन्य है इस देवीके साहस, पतिप्रेम और धर्माचरणको!

२ श्रीसती सीताजी।

"श्रीजानकी राम नृपस्य देवी
दग्धा न संधुक्षित वन्हिना च
देवेश पूज्या भवतिस्म शीला-
च्छीलं ततोऽहं परिपाल यामि"

"रामचन्द्रका वंश परिचय"

इक्ष्वाकु-वंश संसारमें सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि भगवान् आदि नाथ तीर्थङ्कर इसी वंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके अतिरिक्त अन्यान्य तेजस्वी महाप्रतापी राजर्षि गणने भी इस वंशकी कीर्त्ति अपनी वीरता सदाचारिता और धर्मपरायणतादि गुणोंसे चिरस्थायिनी की है। इसी प्रशस्त इक्ष्वाकु-वंशमें काल क्रमानुसार राजोचित समस्त गुण

सम्पन्न "अरण्य" नामक राजा उत्पन्न हुए तथा इन अरण्य नृपतिके ज्येष्ठ पुत्र महाराजा दशरथ थे। यद्यपि महाराजा दशरथके अन्त:पुर (रनवास) में बहुतसी रानियाँ थीं पर उन सबोंमें कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी और सुप्रभा, ये चार रानियाँही प्रधान रानी थीं। इनहीं चार रानियोंसे क्रमसे रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चार पुत्र-रत्नोंका जन्म हुआ था। इन पुत्रोंको इनके योग्य पिताने बाल्यकाल हीमें सुशिक्षित किया। राजकुमारोंके योग्य जो जो विद्यायें उपयुक्त होती हैं उन सब विद्या और कलाओंमें उन्हें निपुण बनाया। इस शिक्षाके प्रभावसे इन राजकुमारोंमें नैतिक बल, समीचीन साहस, कर्त्तव्य परायणतादि गुणोंका संनिवेश वास्तविक था। यही कारण है कि इनका चरित्र इन गुणोंसे इतने महत्त्वका है कि न केवल वह आदर्शही किन्तु मनुष्यमात्रको उपादेय और अनुकरणीय है। यह रामचन्द्रादि, पिताके आज्ञापालक सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय और असाधारण धैर्यशाली थे। आपत्ति कालमें धीरता रखना, दु:खितोंके दु:खको दूर करना तथा जैन धर्मकी सच्ची प्रभावना करनाही इनके प्रधान गुण थे।

सीताजीका वंश परिचय।

उनका रामचन्द्रजी से सम्बन्ध।

जिस प्रकार इक्ष्वाकु वंशमें आदर्श राजाओंने जन्म पाया है उसी प्रकार हरिवंश भी प्रख्यात राजाओंका जन्मदाता है। इस वंशके राजगणोंकी गुणगरिमाने इतिहासमें अच्छा स्थान पाया है। इसी वंशमें मिथिलापुरीका अधिपति इन्द्रकेतु नामक महाप्रतापी राजा हुआ तथा इनके जनक नामक पुत्र हुए जो कि अपने पिता इन्द्रकेतुके स्वर्गारोहणके पश्चात् राज्यके शासक हुए। इनका पाणि-ग्रहण विदेहा नामको किसी राजपुत्रीसे हुआ था। पाणिग्रहणके कुछ दिन पीछे इन जनकको विदेहासे युगल सन्तानकी उत्पत्ति हुई जिसमें एक कन्या और पुत्र था। पूर्वजन्मके वैरसे कोई देव पुत्रको उठा ले गया। पीछे दयासे किसी स्थानपर छोड़ दिया। रथनूपुर नगरके चन्द्रगति विद्याधर राजाने उसको पाया और अपने घर ले जाकर उसे पाला पोसा। इधर जानकी भी दिन दिन बढ़ने लगी। एक दिन नारद सीताको देखनेको आये। सीताने पहले कभी ऐसे मनुष्यको नहीं देखा था इसलिये नारदको देखकर कोठेमें घुसने लगी। यह कोलाहल देखकर महलरक्षकोंने नारदको पकड़ना चाहा। जैसे तैसे नारदने उन रक्षकोंसे अपना पिण्ड

छुड़ाया और भयभीत हो किसी पर्वतके ऊपर बैठकर वैरका बदला लेनेकी ठानी। कुछ सोच विचारकर सीताका चित्र खींचा और सीताके भाई भामण्डलको उस चित्रको दिखाया। वह चित्र इतना मनोहर था कि उसको देखनेमात्रसे भामण्डलका चित्त मदनबाणोंसे पीड़ित होने लगा। नाना उपचार करनेपर भी उनकी वह व्यथा बढ़तीही गई और इतने विचार शून्य हो गये कि किसी की लाज न करके सबके सामने सीता सीता शब्दका पाठ करने लगे। इस बातको चन्द्रगतिकी रानीने सुना और समस्त वृत्तान्त अपने पतिसे कहा। चन्द्रगति इस समाचारको सुनकर अति विस्मित हुआ और भामण्डलके पास आकर बहुत समझाया पर उसने एक न मानी। तब चन्द्रगतिने यह स्थिर किया कि सीताके पिताको यहीं बुलाना चाहिये और भामण्डलके लिये सीताको मांगना चाहिये। इस कामके लिये चन्द्रगतिने एक विद्याधरको नियुक्त किया और वह विद्याधर अपनी विद्यासे जनकको रथनूपुर ले आया। जनकके सामने वह प्रस्ताव उपस्थित किया गया। जनकने किसी समय अपने विचारको इस तरह स्थिर किया था कि यह समस्त विद्याओंमें निपुण, सकल कलाओंमें प्रवीण सीता, महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रजीको दूँगा। इस कारण राजा जनकने चन्द्रगतिके प्रस्तावको मंजूर नहीं किया। तब विद्याधरोंका अधिपति चन्द्रगति और उसके अनुयायी विद्याधर अति क्रुद्ध हुए

और सहसा बोल उठे कि यह वज्रावर्त्त और सागरावर्त्त नामके धनुष हैं इनको जो कोई चढ़ायेगा वही सीताका पति होगा। जनकने इस बातको स्वीकार किया और वे विद्याधर उन दोनों धनुषोंको लेकर जनकके साथ मिथिला-पुरीको आये। जनकने समस्त राजमण्डलको निमन्त्रण दिया। चारों तरफ़से नाना देशोंके अनेक वीर राजा मिथिलापुरीमें आये। राजा दशरथ भी अपने पुत्रों सहित उस स्थानपर आये। सभामण्डप बनाया गया। राजा और राजकुमार अपने अपने आसनपर आ विराजे। रामचन्द्र और लक्ष्मण भी अपने अपने आसनपर बैठ गये। आज सीताका स्वयम्बर दिन है। राजाओंके हृदयमें अनुपम सुन्दरी सीताका ध्यान लग रहा है। कोई राजा विचारता है कि इसके बिना संसारमें रहना व्यर्थ है। और कोई विचारता है इसके रूप और लावण्यके योग्य मैं ही हूँ और कोई इसके योग्य नहीं। इस प्रकार सभा-मण्डपमें उपस्थित राजगण मनमानी कल्पना कर रहे थे। उसी समय वह प्रस्ताव उपस्थित किया गया अर्थात् इस बातकी घोषणा की गई कि वही राजकुमार इस परम सुन्दरी सीताका पति होगा जो कोई इस "वज्रावर्त्त" धनुषको चढ़ायेगा। वह धनुष बड़ाही भीषण था। विद्याधरों द्वारा रक्षित था। तथा अग्निकुलिङ्गाओंकी रक्तज्वालाएँ अच्छों अच्छोंके धैर्यको च्युत करनेवाली उसमें से निकल रही थीं। बड़े बड़े भुजङ्ग अपनी भयावनी जीभें निकाल रहे थे।

पर कामके वशीभूत राजागण कब डरनेवाले थे? वे मृत्यु के मुखमें प्रवेश करनेको तैयार हो गये। अर्थात् धनुषको चढ़ानेके लिये उद्यम करने लगे। पर किसी भी राजाको चढ़ानेको बात तो दूर रही उसके पास जानेका भी साहस नहीं हुआ। समस्त राजा अपना अपना सिर धुनने लगे और अन्तमें लज्जित हो ज्योंके त्यों अपने अपने आसनपर आ बैठे। सब लोग अवाक् होके रह गये। और प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें यह भावना उत्पन्न होने लगी कि अब इस धरणीतलपर ऐसा कोई वीर नहीं जो इस धनुषको चढ़ायेगा। पर उन्हें यह मालूम नहीं था कि महाराजा दशरथके सुपुत्र श्रीरामचन्द्रजी इस धनुषको चढायेंगे और सीताके पति होंगे। जब रामचन्द्रजीने देखा कि सबके बल और पौरुषकी परीक्षा हो चुकी अर्थात् कोई भी इसे चढ़ानेको समर्थ नहीं हुआ तब महापराक्रमी रामचन्द्र धनुषको चढ़ानेके लिये उद्यमी हुए और धनुषके पास गये। रामचन्द्रजीके पूर्वोपार्जित पुण्योदयसे वे अग्निज्वालायें और वे सर्प एकदम विलीन हो गये। रामचन्द्रजीने उस धनुषको पुष्पमालाकी तरह उठा लिया और उसे चढ़ाया। दर्शकगण चकित होके रहगये और रामचन्द्रका मुँह ताकने लगे। बस फिर क्या था? सीताने वरमाला रामचन्द्रके गलेमें डाल दी। अनन्तर बड़े समारोहसे रामचन्द्र और सीताका पाणिग्रहण हुआ।

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी की विशेष बातें।

जब राजा दशरथको कैकेयीके स्वयम्बर समयमें स्वयम्बरसे असन्तुष्ट राज गणसे भीषण युद्ध करना पड़ा था, उस समय सर्व-गुण-सम्पन्न कैकेयीने दशरथको असाधारण सहायता दी थी। इसीसे महाराज दशरथने उस महायुद्धमें विजय लाभ की थी और सन्तुष्ट होकर कैकेयीको वरदान दिया था। कैकेयीने उस वरको उस समय न लेकर धरोहर रखनेकी प्रार्थना की और महाराजने उसे स्वीकार किया। जब महाराज दशरथको राज्य करते बहुत समय हो गया तो उनको संसारसे वैराग्य आया और जिनेन्द्र दीक्षाके ग्रहण करनेको उद्यत हुए। पर कैकेयीके सुपुत्र "भरत" संसारसे उदासीन हो पितासे भी पहिले दीक्षित होना चाहते थे। कैकेयीको यह बात नहीं रुची। पति और पुत्र दोनोंका एकही साथ वियोग होते देख उसे बुद्धि उत्पन्न हुई और उसने विचारा कि, अब उस वरका समय है। यदि मैं उस वरसे अपने पुत्रको राजगद्दी दिला दूँ तो मेरा पुत्र दीक्षित न होगा। बस क्या था— रानीने पतिसे अपने धरोहर वर की याचना की। यद्यपि न्यास से राज्यका स्वामी होना रामचन्द्रको योग्य था पर दृढ़ प्रतिज्ञ महाराज दशरथने ऐसा नहीं किया अर्थात् भरतही को राज्य का अधिकारी बनाकर दीक्षित हो गये। रामचन्द्र जी हुये।

शील थे, पिताके आज्ञाकारी थे; इसीसे उन्होंने इस विषय में हस्तक्षेप नहीं किया और विचारा कि यदि हम इस राज्यमें रहेंगे तो प्रजा जन हमसे अधिक प्रेम करेंगे और हमें राज्य का अधिकारी होनेको वाधित करेंगे, इसलिये यहांसे चला जाना ही उचित होगा। रामचन्द्रजी बनको जानेके लिये उद्यत हुए। अपने पतिको बनवास करनेका उद्यमी देखकर सीता आकुल व्याकुल हो उठीं और अपने प्राणप्रियके साथ जानेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया। यद्यपि रामचन्द्रजीने बहुत कुछ समझाया बुझाया पर उनके हृदयमें एक भी न आई। सीता जानती थी कि स्त्रियोंको पतिके विना स्वर्गमें भी रहना अच्छा नहीं लगता। पति ही नारियोंका प्राण है। वही पति नारियोंका सर्वस्व है। हमारा पति बनमें जाय और हम घरमें रहें यह बात कभी नहीं होगी इत्यादि बातें विचार रामके समझाने पर भी उसने अपने विचारको नहीं बदला और अन्तमें सीता अपने पतिहीके साथ बन जानेको उद्यत हो गई। इसी प्रकार लक्ष्मण भी अपने बड़े भाईका अनु-गमन करनेको उद्यमी हो गये। जब रामचन्द्रजीने कोई उपाय नहीं देखा तब सीता और लक्ष्मण को साथ ले बनका [illegible]र्ग लिया। हा! कैसा विलक्षण यह पतिप्रेम है और [illegible] गाढ़ भक्ति है जिससे प्रेरित हो आज सीता पैदल बन [illegible]ा रही है। जिस सीताने कभी पृथ्वीका स्पर्श भी नहीं [illegible] था, जिसने कभी स्वप्नोंमें भी दुःख नहीं भोगा था,

जिसको यह भी ज्ञान नहीं था कि बन क्या वस्तु होती है, वही सीता पति-प्रेम लीन हो इस बनसे उस बनमें और उससे इसमें भ्रमण करती फिरती है। सीताको अब उन ऊँचे ऊँचे महलोंपर पुष्प-शय्या का सुख नहीं है। सीताको नाना प्रकारके स्वादु-सुखद व्यञ्जन नहीं हैं। सीताके शरीरमें अब सुवर्ण-मय और रत्न-मय आभूषण नहीं हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि सीताके पास सुखकी कोई सामग्री नहीं है तौभी सीता सुखी है। उसका सुख अपार है। वह अपने सुखके सामने स्वर्गके सुखको तुच्छ समझती है। तीन लोक की विभूति भी सीता को सूखे तृणके समान है। केवल पति के चरण कमलोंके दर्शन मात्रसे ही सीता अपनेको परम सुखी मानती है। पतिकी सेवा करके ही अपनेको कृतकृत्य मानती है। यही कारण है कि सीता उस महा भीषण बन को सुन्दर महल समझती है और मार्गमें पड़े हुए कंटकोंको पुष्प-शय्या जानती है! इसी प्रकार नाना दुःखोंको और अनेक कष्टोंको सहन करती हुई सीता और रामचन्द्र को बहुत दिन बीत गये। जब रामचन्द्रने दण्डक बनमें प्रवेश किया उसी समय दुराचारी रावण ने अपने छलसे सीताको हरण कर लिया। रामचन्द्र और लक्ष्मण उस समय सीताके पास नहीं थे। इसलिये रावणको अपने कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा भी नहीं पड़ी। जब रामचन्द्रने उस स्थान पर आकर देखा कि सीता नहीं है। तो अत्यन्त खिन्न और शोकातुर हुये।

पश्चात् सीताको ढूँढ़ने के लिये उद्यत हुये। इधर अविचारी रावण सीताको लङ्का में लाकर सीताको इच्छा पूर्वक अपनी छृणित कामनाको पूरी करना चाहता था। यहाँ पर पाठक पाठिकाओंको यह ध्यान रहे कि रावणने किसी अवसर पर यह प्रतिज्ञा ले ली थी कि "जो स्त्री अपनी इच्छा पूर्वक हमें चाहेगी उसीका मैं प्रणयी होऊँगा अन्यथा नहीं।" इसी कारण उस कामीने उस अबला पर बलात्कार नहीं किया। किन्तु सीताको राज़ी करनेकी विविध चेष्टा करनेपर भी उनका सुमेरु जैसा मन कुछ भी नहीं चला। उस समय सीताके समीप कोई सहायक नहीं था। सीताके प्राणनाथ सीतासे हज़ारों कोसोंकी दूरीपर थे। ऐसे दुर्घट समय में सीताको भयङ्कर भय बताये गये और सहस्रों प्रलोभन दिये गये। घोर यातना और तीव्र वेदनाओंसे सीताके विचारको बदलने की चेष्टाएँ की गईं—पर सीताने अपने हृदयको पाषाणका बनाकर उन सब दुखोंको सहन किया।

सीताका पातिव्रत निर्दोष और सत्य था। इसी कारण दुःख सहने पर भी उसने थोड़ा भी कलंक नहीं लगने दिया। महासती सीताने तबतक अन्न पानका ग्रहण नहीं किया जब तक उसने अपने प्राणनाथका कोई समाचार नहीं पाया। महावीर हनुमान (पवनञ्जय) ने सीताकी खोज की और सीताको लंका में देखा। देखकर रामचन्द्रका कुशल-समाचार सुनाया और आश्वासन दिया। इस समाचारको पाकर

ही सीताके जीमें जी आया और संकुचित जीवनलताका फिरसे विकास हुआ। इधर रामचन्द्रके शुभोदयसे बहुत से सहायक आन मिले थे। इसलिये बहुत से वीरोंको लेकर उन्होंने लंकापर चढ़ाई की। लंकामें आकर रामचन्द्रने रावणको कहला भेजा कि तुम यदि सीताको अपनी इच्छासे देना चाहते हो तो दे दो, अन्यथा हम बलात् सीताको ले जायँगे और तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। इस प्रकार उदारचेता रामचन्द्रने अपनी गम्भीरता और उदारताका परिचय दिया पर कामान्ध रावणको एक भी नहीं सुहाई। उसका विचार टससे मस नहीं हुआ। सो ठीक है—क्योंकि "विनाश काले विपरीति बुद्धिः।" इस नीतिके अनुसार विनाशके समय लोगोंकी उलटी मति हो ही जाती है। बस क्या था, दोनों पक्षके योद्धा गण रणाङ्गणमें उतर पड़े। महा घोर युद्ध ठना। क्रमशः रावणकी पराजय होती गई। परम रणासक्त रावणके विचारोंमें अंश मात्र भी परिवर्त्तन नहीं हुआ। बराबर युद्ध करता ही गया। रावण विषय लम्पटी था। कामके वशीभूत था। कर्तव्याकर्त्तव्य के ज्ञानसे शून्य था। महा अविनयी था—और अविवेकी था; इसलिये उसका अधःपतन हुआ। रामचन्द्रने उसे युद्धमें मारकर परलोक का मार्ग बताया। रावणकी कीर्त्ति सदाके लिये लोप हो गई और उसके मस्तक पर ऐसा कलंकका टीका लगा कि आज हजारों बरसोंके बीत जानेपर भी उसका मार्जन नहीं हुआ।

यही कारण है कि आज रावणका नाम आनेसे उसके ऊपर घृणा आती है और ऐतिहासिक दृष्टिसे निरादर का पात्र गिना जाता है। अस्तु। जो होना था हो गया। जो भवितव्यता होती है वह होही कर रहती है। उसे कोई नहीं मेट सकता। रामचन्द्रने लंकाको विजय किया और लंका का राज्य विभीषण को दिया और अपनी प्राण प्रिया पतिव्रता सीता को लेकर अयोध्या आये। यहाँ आकर इनका राज्याभिषेक हुआ। राजसिंहासन पर विराजमान् हुये। बहुत दिनोंसे बिछुड़े हुये अपने परिवार जनोंको सुखमय किया। प्रजा पर पुत्रकी तरह वात्सल्य भावसे शासन करने लगे। इसी प्रकार सीता और लक्ष्मण भरत इत्यादिकोंके साथ सुख से दिन बिताने लगे। अभी महाराज रामचन्द्रको गद्दीपर बैठे अधिक दिन नहीं हुये थे कि अकस्मात् एक घटना आ उपस्थित हुई। कुछ नगर के लोग समुदाय होकर राजभवनमें आये और आकर बैठ गये। आनेका कारण पूछने पर उन आगत जनोंके धृष्ट नेता "विजय" नामा पुरोहितने इन कर्णभेदी शब्दोंको उच्चारण किया कि महाराज!!! सीता जो इतने दिनोंतक रावणके घर पर रहीं और उनको बिना सोचे विचारे आपने अपने गृहमें प्रविष्ट कर लिया! हे प्रभो! आप प्रजाके शासक हैं। आपके आधीन बहुत जन समुदाय हैं। राजा का प्रजाके ऊपर अधिक प्रभाव पड़ता है। जैसा राजाका व्यवहार होता है वैसा ही व्यव·

हार उस राजाकी प्रजाका हो जाता है। आपके इस व्यवहारको देखकर प्रजा उच्छृंखल और निरर्गल हो गई है इत्यादि।

यह बात सुनकर रामको अतिशय खेद हुआ। रामचन्द्र को अपनी प्रिया के सतीत्वमें लेशमात्र भी शंका नहीं थी। तौभी रामचन्द्र -बहुसंख्यक जन-समुदाय के शासक थे। सामाजिक नियमोंके पूर्ण मर्मी थे। पूर्वापर विचार में अति चतुर थे। वे जानते थे कि इनका कहना ठीक है। यदि आज हम ही ऐसा करेंगे तो हमारे आधीन प्रजा भी समाज के नियम परिपालन में स्वेच्छाचारप्रवृत्ति करेगी इत्यादि बिवेचन कर दूरदर्शी स्वार्थ-हीन महात्मा रामचन्द्रने प्राणप्रिया सीता को परित्याग करनेका विचार कर लिया। सीता को गर्भ था। इसलिये उस पुण्यशीलाको निर्वाण भूमिके दर्शनोंकी इच्छा हुई और पतिसे निवेदन किया। रामचन्द्रको अच्छा अवसर मिल गया। अपने क्षतान्त वक्र नामक सेनापतिको बुलाके कहा कि सीताको निर्वाण-भूमिके दर्शनोंके बहानेसे किसी वनमें छोड़कर चले आओ। क्षतान्तवक्र सीताको रथमें बैठा कर भयङ्कर वनमें ले गया। वहाँ ले जाकर छोड़ दिया। उन वनों को देख सीताको आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—क्या यही वह निर्वाण भूमि है? क्षतान्त वक्र मनुष्य था। उसका हृदय पिघल गया और अश्रुओंकी धारा बहाने लगा। सीताके पूछने पर उसने सब वृत्तान्त

सुनाया। सीता इस आकस्मिक वज्र-पातसे मूर्छित हो गई। क्षणिक में सचेत हो मनस्विनी सीता (सचेत हो) कहने लगी भाई! रुदन मत करो। प्रसन्नतासे अपने स्वामीके पास जाओ। किन्तु वहाँ जाकर हमारा एक संदेशा अवश्य कह देना कि "जनापवादके भयसे मुझ निरपराधिनीको जिस तरह छोड़ दिया इसी प्रकार मिथ्यादृष्टियोंके भयसे जैन धर्म नहीं छोड़ देना।" देखो कैसा गम्भीर और मर्मस्पर्शी उपदेश है। ऐसी घोर दशामें सीताकी सुबुद्धि निस्तब्ध और चञ्चलता से बिल्कुल शून्य है। आज उसकी जीवन-लीला संसारके सब सुखोंसे दूर पर है तोभी वह अपने स्वाभाविक धैर्य,साहस और नैतिक बलका अवलम्बन लेकर आपत्ति घटाको सरलता से सहन करती चली जाती है। पाठक और पाठिकागण!! देखो संसारका कैसा दृश्य है! जो जानकी जगदीश रामचन्द्र बलभद्र की प्रधान रानी है वही हिंस्रक जन्तुओंसे पूर्ण वनमें असहाय होकर भ्रमण करे!!! कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र और दुर्निवार है। यह कर्मोंका ही माहात्म्य है जो महा-सती सीता को इन असह्य आपत्तियोंको सहन करना पड़ा। अस्तु। सीताको छोड़कर कृतान्तवक्रने आकर रामचन्द्रसे सब वृत्तान्त कह सुनाया और वह संदेशा भी सुनाया जो सीताने आते समय कह दिया था। रामचन्द्र गुणवती सीताके गुणानुवाद कर अपने दिन बिताने लगे। इधर एक दिन वज्रजंघ राजा हाथीको पकड़नेके लिये उसी वनमें आया था।

सीताको देखकर दया चाई। उसे धर्मकी भगिनी मानकर अपने घर ले गया और सुखसे रक्खा। सीता अपने दिनोंको सुखसे बिताने लगी। नौ महीना पूर्ण होनेपर सीताको लव और कुश नामक महा शूरवीर दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। यह दोनों पुत्र बड़े हुये। एक दिन दैवयोगसे सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक वहाँ आया। क्षुल्लकने इन बालकोंको होनहार देखकर शास्त्र और शस्त्र विद्या में अति निपुण करदिया। एकबार इन दोनों कुमारोंको देखने के लिये कलह-प्रिय नारद आये और आकर इन दोनों पुत्रोंको आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों भाई राम और लक्ष्मणकी तरह समृद्धिशाली होओ। कौतुकी बालकोंसे रहा न गया और उन्होंने पूँछ ही लिया कि हे महर्षि! वे राम और लक्ष्मण कौन हैं? उनका सब वृत्तान्त हमसे कहो। नारदने सीताके हरणसे लेकर त्याग पर्यन्तका सब वृत्तान्त कह सुनाया। पिताकी कृतिपर दोनों बालकों को क्रोध आया और अयोध्याको प्रयाण किया। थोड़े ही दिनोंमें अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ महायोद्धा दोनों भाई अयोध्या में पहुँच गये और राम लक्ष्मण के पास दूत भेजा। दूतने आकर कहा, "महाराज! आपकी ख्याति सुनकर लव और कुश दो राज-पुत्र युद्ध के लिये आये हैं। यदि आपमें सामर्थ्य है तो इनके साथ युद्ध कीजिये।" राम और लक्ष्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ और कहा "अच्छा ऐसा

ही करेंगी।" उभय पक्षके योद्धा गण संग्राम-भूमिमें अवतीर्ण होगये। महातुमुल युद्ध होने लगा। लव राम से और कुश लक्ष्मण से लड़ने लगे। लव और कुश दोनों भाई बड़े वीर थे। दोनोंने रणाङ्गणमें अपना अजेय पराक्रम दिखाया। लव ने रामके सात रथ तोड़ डाले। इधर कुश ने भी लक्ष्मण को अस्तव्यस्त कर दिया। कुशके एक बाणसे लक्ष्मण अचेत हो गये। तब उनका सारथी लक्ष्मणको अयोध्या ले जाने लगा। मार्गमें ही लक्ष्मण सचेत हुये और रणभूमि में लौट आये। लक्ष्मणने क्रुद्ध होकर कुशके ऊपर चक्र प्रहार किया। चक्र तीन प्रदक्षिणा देकर कुशकी भुजापर स्थिर हो गया। उसे लेकर कुशने लक्ष्मणपर चलाया पर उसी तरह प्रदक्षिणा देकर लक्ष्मणकी भुजापर स्थिर हो गया। इसी प्रकार उस चक्रने सात बार गतागत किया पर किसीपर वह चला नहीं अर्थात् किसीका प्राणाघात उससे नहीं हुआ। लक्ष्मण अधीर और निरुद्यमी हो गये। चक्र न चलनेसे बड़ा आश्चर्य हुआ। ऊपर विमानमें सीता, भामण्डल और नारद प्रभृति इस बन्धुसंग्रामको देख रहे थे। नारदने आकर कहा, क्यों अधीर हो गये? लक्ष्मण लज्जित हुए। इधर नारदने कहा यह दोनों सीतासुत हैं। इस बातको सुनकर असीम आनन्द हुआ। लक्ष्मण अपने बड़े भाई रामचन्द्रके पास गये और सब वृत्तान्त कहा। दोनों भाई युद्धके आरम्भको छोड़कर अपने वीर पुत्रोंके सम्मुख आये। राम-

चन्द्र और लक्ष्मणको आते देख दोनों भाई रथसे उतर पड़े और हाथ जोड़कर विनय-नम्र हो रामचन्द्रके चरणोंमें पड़ गये। रामचन्द्रने बड़े हर्षसे आलिङ्गन किया। फिर दोनों भाइयोंने लक्ष्मणको नमस्कार किया और लक्ष्मणने अनेक शुभाशीर्वाद दिये। पश्चात् बड़े उत्सव और समारोहके साथ दोनों पुत्रोंका नगर-प्रवेश हुआ और कुश युवराज पदपर अभिषिक्त किया गया। एक दिन सब मन्त्रियोंने मिलकर रामचन्द्रसे कहा कि महाराज! जगत्प्रसिद्ध महासती सीताको बुलाना चाहिये। रामचन्द्रने कहा उसके शीलमें हमें कुछ भी सन्देह नहीं, पर लोकापवादके भयसे मैंने उसे छोड़ा। कोई ऐसा उपाय करो जिससे जनापवाद छूट जाय। सुग्रीवादिने पुण्डरीकिणी नगरीमें जाकर सीताको सब वृत्तान्त सुनाया और सीताने उनकी बातोंको स्वीकार किया तथा पुष्पक विमानमें चढ़कर सीता सन्ध्या समय अयोध्यानगरीके महेन्द्र नामक एक उद्यानमें ठहरी। प्रभात होतेही रामचन्द्र जी और लक्ष्मणजीने जिनेन्द्र भगवान्की भक्तिभावसे पूजाकी और अपने अपने उचित आसनों पर बैठ गये। थोड़ी देरबाद सीता आई और वह भी अपने उचित आसनमें बैठ गई। रामचन्द्रने कहा मैंने तुम्हें केवल जनापवादके भयसे छोड़ा है। इसलिये कोई ऐसा उपाय करो जिससे सर्वसाधारणको तुम्हारी निर्दोषताकी प्रतीत हो और तुम्हारे अखण्ड शीलव्रत पर सबका विश्वास हो। सीताने पतिके प्रस्तावको सहर्ष

स्वीकार किया और कहा कि अवश्यही मैं दिव्य परीक्षा द्वारा आरोपित दोषका उद्धार करूँगी। सीताकी आज्ञानुसार एक सुन्दर स्थानपर कुण्ड बनवाया गया और उसमें कालागुरु, अगर, चन्दन भरवाया गया और उसमें अग्नि लगाई गई। उस समयका दृश्य बहुत मनोहर और भीषण था। असंख्य नरनारी इस अपूर्व दृश्यको देखनेके लिये उपस्थित थे। सभीके हृदयमें नाना भाँतिके विचार उत्पन्न होने लगे। यह सब हो रहा था कि इतनेहीमें सीताने गम्भीरतर स्वरसे कहा:—

"मनसि वचसि काये जागरे स्वप्न मार्गे
मम यदि पति भावो राघवादन्यपुंसः
तदिह दह शरीरं पावके मामकेदम्
सुकृतविकृतनीतेदेंव साक्षी त्वमेव"

अर्थात् हे उपस्थित महानुभावो! ध्यानसे सुनो। यदि मैंने रामचन्द्रको छोड़कर अन्य पुरुषको मन, वचन, कायसे स्वप्नमें भी कामना की हो, तो यह मेरा शरीर इस प्रचण्ड अग्निमें भस्म हो जाय। ऐसी प्रतिज्ञा कर श्रीसीता उस धधकती हुई वह्निमें निःशंक हो कूद पड़ी। इसी अवसरपर इन्द्रादिक देव किसी कार्यको जा रहे थे। मार्गमें जब इस घटना-स्थलपर आये तो सीताको अति सती जानकर इन्द्रने शीलव्रतकी प्रभावनाके लिये "मेघकेतु" नामा देवको वहाँ नियुक्त किया। और वह देव वहाँपर आगया। सीताने प्रवेश किया ही था-

कि दर्शकगणोंका हा! जानकी!! हा! सीते! ऐसा हाहाकार मच गया और महान् कोलाहल होने लगा, रामचन्द्र मूर्छित होगये, लक्ष्मण विह्वल होगये, और पुत्र भी अतिशय खिन्न हो गये। तब देवने अपनी विक्रियासे उस अग्नि-कुंडको एक मनोहर तालाब बनाया। तालाबके मध्य भागमें सहस्र दलका एक कमल बनाया और कमलकी मध्य कर्णिकापर एक सिंहासन निर्माण कर उस पर सीताको बैठाया और सिंहासनके ऊपर मणिखचित मंडप बनाया। ऊपर से देवोंने प्रसन्न होकर आकाश-मार्गसे पञ्चाश्चर्यों की वर्षा की और साथ साथ उस तालाबका प्रवाह इतना बढ़ा कि दर्शकगणोंको प्राणरक्षा करना असंभवसा मालूम होने लगा। धीरे धीरे पानी बढ़ा और बढ़कर दर्शकोंके गलों तक आ गया। घोर आक्रन्दन और आर्त्त-निनाद से दिशाएँ गूँज उठीं। दशों दिशायें जलसे प्लावित हो गईं और त्राहि त्राहि का कर्णवेधी स्वर सब जगह होने लगा। जब इस बातका सर्व-साधारणको ज्ञान हो-गया कि यह सब माहात्म्य पतिव्रता सीताके निर्दोष शील-व्रतका है, तब देवने अपनी मायाका संवरण किया। दर्शकों को शान्ति हुई और सीता की निर्दोषताकी प्रतीति हुई। तथा रामचन्द्रके शुद्ध और निर्दोष शासन का परिचय मिला।

रामचन्द्र भी अपनी पत्नीकी सत्यता और पातिव्रतपर मुग्ध होगये तथा अपनी पत्नीको देवकृत अतिशय से सम्मा-

नित देखकर फूले अंग न समाये और आनन्द के ऐसे आवेश में आये कि सीताके पास आकर अपने अपराधोंकी क्षमा मांगने लगे और कहा हे प्रिये! मुझे क्षमा करो केवल जनापवाद से ही मैंने तुमको छोड़ा अब आओ एकबार फिर उसी प्रेमबन्धनसे बँधें और संसारके नाना सुखोंका अनुभव करें। भोगोंसे विरक्त सीताने उत्तर दिया आपको तो क्षमा ही है पर जिन कर्मोंने मुझे ऐसा नाच नचाया है उन कर्मोंके लिये क्षमा कैसे हो सकती है? उन कर्मोंके नाश करनेके लिए घोर तपश्चरण ही शरण है। संसारका समस्त सार देख लिया सिवाय दुःख के सुख का लेश भी नहीं है। यह प्राणी वृथाही जंजालमें फंस ममत्व-बुद्धि करता है। वास्तवमें कोई किसीका नहीं। 'यह हमारी माता है' 'यह हमारे भाई बहिन हैं,' 'यह हमारी संपत्ति है' इत्यादि आडम्बरोंसे यह जीव ज्ञानावरण, दर्शनावरण इत्यादि आठ कर्मोंका निरन्तर बन्ध करता रहता है—तथा इन्हीं कर्मोंके उदय से नरक तिर्यञ्चादि गतियों में नाना प्रकारके कष्ट और यातना सहता है जबतक यह जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र को प्राप्त नहीं कर लेगा तबतक वह संसारमें निरन्तर परिभ्रमण करता रहेगा। किन्तु अष्ट कर्मोंके नाश होनेसे उत्पन्न हुए उस अतीन्द्रिय सुखके लेशको भी नहीं पावेगा। प्राणीमात्रका लक्ष्य सुख की ओर है पर यह जीव उस के प्राप्त करनेका मार्ग नहीं जानकर बान्धवादि के प्रेमबन्धन

में पड़कर उस सुखसे सदा विलग ही रहता है। मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि अनादि से नाना योनियोंमें परिभ्रमण किया पर अभी तक अपने ध्येयको प्राप्ति नहीं हुई। उस परमपद पानेका सरल उपाय जैनेन्द्री दीक्षा ही है। चारों गतियोंमें मनुष्य गति ही ऐसी गति है जिसमें उत्तम क्षमा, विवशधर्म, अनित्याशरणादि, द्वादश भावना, तथा अन्य अन्य धर्मके साधनोंको कर सकता है। जिस जीवने मनुष्यपर्याय पाकर भी कठिन तपश्चरणादि से आत्माका कल्याण नहीं किया और केवल विषयादिक की पुष्टिहोमें इस शरीर का उपयोग किया उन नराधमोंने राखके लिये मुक्ताहार को दग्ध किया। क्षणिक सुखके लिये नित्य सुखमें अन्तराय किया इसलिये अब जाओ मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी किन्तु जैनेन्द्री दीक्षा धारण कर कर्म समूहका नाश करूँगी। इतना कह कर सीताने अपने केश उत्पाटनकर रामचन्द्रके सामने फेंक दिये और देवपरिवार के साथ श्री जिनेन्द्र भगवान्के समवशरणमें जाकर जिनेन्द्र भगवानको वन्दनाकर "पृथ्वीमति" नामिका अर्जिकाके समीप दीक्षा ले ली और बासठ वर्ष तक कठिन तपस्या कर तैतीस दिन का संन्यास धारण करके शरीर को छोड़ अच्युत नामा सोलहवें स्वर्गमें जा स्वयंप्रभा नामा देवी हुई।

पाठक और पाठिका गण! आपने भली भांति जान लिया होगा कि सीताकी सम्पूर्ण जीवनलीला दुःखमय बीती है।

सीता पर अनेक दुर्घटनायें हुई हैं। उस सीता ने निःसहाय होकर भी कैसी सरलतासे सबको सहन किया। सीता अबला स्त्री थी। असहाय नारी थी। पूर्वमें उपार्जन किये हुये कर्म्मसमूह के वशीभूत थी अतएव एक के ऊपर एक आपत्ति आती रही पर सीता हाथपर हाथ रखकर बैठ नहीं गई। उसने आत्मावलम्बन लेकर असाधारण पौरुष का परिचय दिया। हम देखते हैं कि यदि हमपर थोड़ी भी आपत्ति आ जाती है तो हम मृततुल्य हो जाते हैं। हमें कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता इसका कारण स्पष्ट है। हममें वह आत्मावलम्बन नहीं है। हम सर्वदा दूसरोंकी बाट जोहा करते हैं। हमारे पास वह सीताका सा शील नहीं है। हम सत्य बोलना नहीं जानते। हम इन्द्रियोंके वशमें पड़े हुये हैं। हमें विषय-कषायसे इतनी प्रीति है कि हमें धर्मके कार्य नहीं भाते। हमारी इन्द्रियाँ इतनी चञ्चल और चपल हैं कि हम किसी सुन्दर वस्तुको देखते हैं तो हमें मोह अवश्य हो जाता है। भला बतलाइये जब हमारी यह दशा है तो हम कैसे आत्मिक उन्नति कर सकते हैं? हम सीताके साहस से कोसों दूर हैं। हममें सीताकीसी जितेन्द्रियताका लेश नहीं है। यही कारण है कि हम अभी तक अपने वास्तविक लक्ष्यके मार्गपर नहीं पहुँचे हैं प्रत्युत दिनों दिन गिरते चले जाते हैं।

हम सीताके चरित्रको प्रतिदिन पढ़ते हैं और अनेक

व्याख्यान और उपदेशोंमें सीता की गुण-गाथा सुनते हैं पर जब हम यह सोचते हैं कि हमारे कितने भाई और कितनी भगनी सीताके गुणोंका अनुसरण करती हैं तो हमें बिल्कुल निराश होना पड़ता है। यदि हमारे समाजमें दो चार ही विदुषी सीता समान उत्पन्न हो जायँ तो थोड़े समयमें ही हमारा जैनसमाज उन्नतिके शिखरपर पहुँच जाय।

हमें आशा और विश्वास है कि जिनशासन के महत्व और उन्नति के अभिलाषी पाठक और पाठिका इस पुण्यात्मा सीताके चरित्र को पढ़कर कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठायेंगे।

धर्मगतप्राणा
महारानी चेलना देवी।
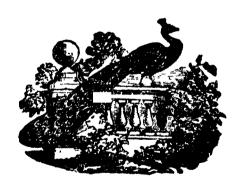
"चेलना रानी थी श्रेणिक राजकी।
विदूषी पतिव्रतरता सिरताज थी॥
उसने निज अध्यातमिक बलसे यथा।
धर्ममय पतिको किया सुनिये कथा॥"

अनुमान २५०० वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो चुका। वैशालीपुर (सिन्धुप्रदेश) में महारानी चेलना का जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम महाराज 'चेटक' था जो उस नगरका राज्य शान्ति पूर्वक करते थे। माताका नाम रानी 'सुप्रभा' था।

इनकी छ: बहिनें थीं, जिनमें पाँच इनसे बड़ी और एक छोटी थी। सबसे बड़ी बहिन राजकुमारी प्रियकारिणी (त्रिशला) कुण्डलपुर (बिहार) के सिद्धार्थ नामके

राजासे विवाही थी। इसी शुभ संयोगसे, जैनधर्मकी सारे भूमण्डलमें विजय वैजयन्ती उड़ानेवाले, अन्तिम तीर्थंकर, श्री वर्द्धमान (महावीर) स्वामीका जन्म हुआ।

इन सातों राजकुमारियोंकी बाल्यावस्थामें उत्तमोत्तम शिक्षाएँ दी गईं थीं जिनसे इन्होंने और और विषयोंके साथ साथ सत्यधर्म जैनधर्मका मर्म अच्छी तरह समझ लिया था।

संयोगवश राजकुमारी चेलनाकी शादी राजगृही(बिहार) के राजा श्रेणिकके साथ हुई। महाराज श्रेणिक बौद्ध धर्मावलम्बी थे। इसलिये दोनों स्वामी और भार्या अपने अपने धर्मकी प्रशंसा कर एक दूसरेको अपने धर्ममें लानेकी प्रेमपूर्वक इच्छा करने लगे। ऊपर लिखा जा चुका है कि राजकुमारी चेलनाको बाल्यकालमें स्वधर्म जैनधर्मकी शिक्षा उत्तम रीतिसे दी गई थी जिससे इस विषयमें उनका ज्ञान दिनों दिन बढ़ता गया और विवाहसम्बन्धके समय वे जैनधर्मकी विशेष पण्डिता हो गईं थीं। इसी कारण राजा श्रेणिकके कई उपदेश व प्रयत्न निष्फल हुए और अन्तमें राजाको ही इस धर्मयुद्धमें पराजित होकर जैनधर्मको खुशीके साथ धारण करना पड़ा, जिसका वर्णन इस प्रकार है कि :—

एक समय राजा और रानी सुख-आसनपर बैठे परस्पर प्रेमालाप कर रहे थे कि बौद्ध-धर्मावलम्बी राजगुरु जिनका नाम "जठराग्नि" था पधारे। महात्मा जठराग्निको भक्ति

भाँति ज्ञात था कि महारानी जैनधर्मावलम्बी हैं। इसीलिये अवसर पाकर कटाक्ष-पूर्ण शब्दोंमें कहा कि—"क्षपणक (जैनगुरु) मरकर क्षपणक (भिक्षुक) होते हैं। महारानी को इस असत्य वाक्यसे बहुत सन्ताप हुआ। होना ही चाहिये, क्योंकि एक सत्यधर्मकी अनुयायिनी अपने धर्मकी इस प्रकार निन्दा नहीं सह सकतीं। परन्तु उस समय महारानीने शान्ति धारण कर विशेष कुछ न कह राजगुरुसे पूछा "महाराज! आपने कैसे जाना?" उत्तर मिला कि 'मुझे विष्णु भगवान्‌ने ऐसी ही विद्या दी है।" महारानीने समझ लिया कि महाराज गप्पाष्टक झाड़ रहे हैं। इनकी परीक्षा करनी चाहिये, ताकि सन्देह की निवृत्ति हो। उन्होंने प्रगट रूपसे कहा कि महाराज! अगर आप ऐसी बुद्धि रखते हैं तो हमारे महलमें भोजनके लिये कल आपका निमन्त्रण है। महाराजने सहर्ष स्वीकार कर लिया। यथासमय अपने कुछ चुने हुए शिष्योंको लेकर नियत स्थानपर आ पहुँचे और जूते उतार बैठकखानेमें बैठे। महारानी चेलना की आज्ञानुसार एक दासीने कुछ जूते उठाकर खाद्य पदार्थोंमें इस तरह मिलाये कि जिससे बिलकुल मालूम न पड़े। पश्चात् भोजन कराया गया। महाराजने अपने शिष्यों समेत खूब अच्छी तरह भोजन किया। जब जाने लगे तब देखा कि कुछ जूतोंका पता नहीं। महलके अन्दरसे जहाँ सैकड़ों संगीनदारोंका दिन रात पहरा रहता है कौन जूते ले जा

सकता है। इसलिये महारानीसे पूछा गया। महारानी ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि आप तो बुद्धि रखते हुए भी इस तरहके प्रश्न करते हैं। आखिर सब हाल विदित हो गया और अपमानित होकर राजगुरु अपने स्थानको प्रस्थानित हुए। उनको अपनी गप्पाष्टकोंका पूरा प्रायश्चित्त मिला। महाराज श्रेणिकको अपने प्रसिद्ध विद्वान् राजगुरुकी इस तरह कार्यविमूढता देख बौद्धधर्मसे कुछ अश्रद्धा होगई। महारानीने यह देख अपने कार्यकी सफलताके चिन्ह समझ और भी उत्तम उपायोंसे काम लेना आरम्भ किया।

एक समयका वर्णन है जबकि बौद्धधर्मावलम्बी साधुगण एक झोंपड़ीमें बैठे परमेश्वरकी ओर ध्यान लगाये थे। राजा रानी सहित वहाँसे निकले। जिन धर्मकी परम भक्त, शुद्ध-हृदय महारानी चेलना को इस पहुँचे हुए साधुओंकी भी परीक्षा करनेका विचार हुआ। उन्होंने अपने अनुचरों द्वारा उस झोंपड़ीमें अग्नि लगवा दी। अग्निको प्रज्वलित देख साधुओंने ध्यान वग़ैर: सब छोड़कर भागना आरम्भ किया। अन्तमें कुछ ही मिनटोंके अन्दर सारी झोंपड़ी ख़ाली होगई। राजा और रानी दोनों इस मनोहर दृश्यको छिपे हुए देख रहे थे। उसी समय वह थोड़ी सी अग्नि शान्त की गई। बड़े विद्वान् और तपस्वी महात्माओंकी बगुलाभक्ति इस तरह दूसरे वक्त भी ज़ाहिर हो गई। इस तरह अपने धर्मकी हँसी कराते देख महाराजा महारानीसे अवश्य रुष्ट हुए, तौभी

महारानी अपने कार्यमें तत्पर रहीं। क्योंकि उनको अपने स्वामीकी आत्माको यथेष्ट शान्ति देनेकी इच्छा थी।

महाराजा श्रेणिक एक दिन शामके समय शिकार खेलकर आ रहे थे। उन्होंने मार्गमें एक जैन मुनिको जोकि नग्नमुद्रा धारण किये शान्तिके स्वरूप थे ध्यानमें लवलीन अचल खड़े हुए देखा। राजाने धर्मद्वेषसे मुनिपर अपने शिकारी कुत्ते छोड़े परन्तु मुनिके प्रभावसे वे कुत्ते द्वेषबुद्धि छोड़कर मुनिके पास जाकर बैठ गये। महाराजाको यह और भी बुरा लगा। इसलिये उन्होंने स्वयं वहीं पड़े हुए एक मृतक सर्पको उठाकर मुनिके गलेमें डाल महलका रास्ता लिया।

चार दिन व्यतीत होनेपर रात्रिके समय जबकि महाराजा और महारानी सुख-शय्या पर बैठे परस्पर वार्त्तालाप कर रहे थे, महाराजने मुनिके साथ किये हुए कार्यका वृत्तान्त भी सुना दिया। महारानीको इससे बहुत कष्ट हुआ। अपनी प्राणप्यारी भार्याको सन्तापित देखकर महाराज बोले कि क्या अबतक वह मृतक सर्प मुनिके गलेमें पड़ा रहा होगा? जो इतना सन्ताप करती हो। महारानीने सरल वाणीसे उत्तर दिया कि जबतक कोई अन्य पुरुष उस सर्पको अलग नहीं करेगा तबतक वे मुनि अपने उपसर्गको जानकर वहीं अचल रहेंगे।

राजाको यह जानकर आश्चर्य हुआ और उसी समय घोड़े

से सेवकों द्वारा दीपकोंका प्रकाश कराकर रानी सहित मुनि के स्थानको गये। वहाँ जाकर देखा तो मुनि महाराज शान्ति मुद्रा धारण किये उसी आसन से खड़े हुए हैं जैसे कि चार दिन पहले थे। गलेमें उसी तरह सर्प पड़ा हुआ है जैसा कि डाला गया था। राजाके हृदयमें एकदम भक्तिका समुद्र लहरा उठा। उन्होंने मुनिकी बहुत प्रकारसे स्तुति की। रात्रि होनेसे मुनि महाराज कुछ बोल न सके। अतः राजा और रानी दोनोंने शेष रात्रि उन्हींके चरणारविन्दोंके समीप व्यतीत की। प्रातःकाल होते ही राजा और रानीने मुनि महाराजको वन्दना की। महाराजने दोनोंको समान रूपसे "धर्मवृद्धि" आशीर्वाद दिया। राजाके भक्तिरूपी समुद्रका तो अब ठिकाना ही क्या हो सकता है? उन्होंने समझ लिया कि यही सत्यगुरु हैं, जिनके स्वच्छ हृदयमें अपराधी और निरपराधी बराबर हैं। असीम भक्तिके कारण महाराजने मुनि के चरणोंमें पूर्वधर्मानुसार अपने सिरको अर्पण करनेकी इच्छा की। मुनि अन्तर्यामी थे इसलिये उन्होंने इनका विचार समझ लिया तथा यह कार्य पाप-कर्म बतलाकर धर्मोपदेश दिया। राजाको बहुत आश्चर्य हुआ। अब उनकी श्रद्धा जैनधर्म में पूर्ण रूपसे होगयी। रानीने अपने सारे परिश्रमको सफल समझा तथा दम्पति यथार्थ आनन्दके साथ काल व्यतीत करने लगे।

रानी चेलनाके क्रमशः कुणिक, वारिषेण, हल्ल, विहल्ल,

जितशत्रु, गजकुमार और मेघकुमार ये सात पुत्ररत्न उत्पन्न हुए। जोकि विद्या, बल और रूपमें इन्द्रको भी विजय करते थे।

एक वनमाली (जङ्गल मुहक़मेके अफ़सर) ने राजसभामें आकर राजा श्रेणिकसे निवेदन किया कि महाराज! आपके राज्यके अन्तर्गत विपुलाचल (विन्ध्याचल) पर्वत पर जगद्गुरू २४ वें तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी संसारी जीवोंके उपकारार्थ उपदेश देनेको पधारे हैं। राजाने इस समाचारको पाकर बहुत आनन्द मनाया तथा महारानी चेलना और सर्व कुटुम्बियों सहित स्वामीजीके दर्शनोंके निमित्त गये। विपुलाचल पर्वत पर पहुँच कर स्वामी जीके उपदेश देनेकी सभा, जिसे समवशरण कहते हैं, की प्राकृतिक रचना देखकर चकित हो गये। केन्द्रस्थलमें स्वामी जी अनुपमेय सिंहासन पर विराजमान हैं। जिनके चारों तरफ़ गोलाकार बारह सभास्थल बने हुए हैं, जिनमें क्रमसे मुनि, कल्पवासिनी देवियाँ, स्त्रियाँ, ज्योतिषी देवियाँ, व्यंतर देवियाँ, भवन-वासिनी देवियाँ, भवनवासी देव, व्यंतर देव, ज्योतिषी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य, विद्याधर भूमि गोचरी और तिर्यञ्च विराजमान हैं। सब द्वेष भाव छोड धर्मश्रवण कर रहे हैं। यद्यपि ये सभायें स्वामीजीको चारों तरफ़ स्थित हैं; तौभी असीम प्रभावके कारण सब श्रोतागणको यही ज्ञात होता है कि महाराज अपने मुखमण्डलको दीप्ति इसी तरफ़ फैलाकर

उपदेश दे रहे हैं। महाराजा और महारानीने स्वामीजीके दर्शन व पूजन करके अपने जन्मको कृतार्थ समझा।

नियमानुसार महारानी चेलना तीसरे और महाराजा श्रेणिक ग्यारहवें सभास्थलमें विराजमान हुए। धर्म श्रवण कर तथा कई शंकाओंको निवृत्ति कर महाराजाने अपने परिणामोंको (अन्य निर्मूल मतोंको बिल्कुल छोड़कर) खूब स्वच्छ किया, जिससे उनको प्रबल पुण्य कर्मोंका बन्ध हुआ। इन्हीं प्रबल पुण्य कर्मोंके अखण्ड प्रतापसे आगामी कालमें महोपम नामक प्रथम तीर्थंकर होकर जगत्के पूज्य होंगे।

उक्त सभामें श्री सम्मेदशिखरजीकी अनुपम महिमा सुनी जहाँसे कि बीस तीर्थंकर संसार के आवागमनको छोड़ परम सुख रूप मोक्षको गये हैं। इसीलिये महाराजा और महारानी ने उस पुण्य भूमिके दर्शन करनेकी इच्छा की और शुभ मुहूर्त्तमें प्रस्थान किया। परन्तु ऊपर कह चुके हैं कि महाराजा श्रेणिकने एक जैन मुनिके गलेमें अपमानके साथ मृतक सर्प डाला था। इसी पाप कर्मके उदयसे मार्गमें उन्हें कई बड़े बड़े विघ्नोंका सामना करना पड़ा। तौभी वे उस पवित्र तीर्थके दर्शन न कर सके और वापिस अपनी राजधानी को लौट आये। महारानी चेलनाने निर्विघ्नतासे तीर्थकी वन्दना की और अपने स्थानको आईं।

अपनी अवस्था को पूर्ण होती देख युवराज कुणिकको राज्यभार देकर महाराजने एकान्तमें रहकर ईश्वरोपासना

करनी शुरू की। परन्तु राज्यभारसे मस्त होनेके कारण कुणिककी प्रवृत्ति बिगड़ गई। इसलिये राजा श्रेणिकको अन्त समय सुख नहीं हुआ।

थोड़े ही दिनोंके बाद रानी चेलना भी दीक्षा धारण कर समाधि मरण करके स्वर्ग सिधारीं।

देखिये! राजकुमारी चेलना ने किस कौशलसे अपने स्वामीको सत्यधर्ममें श्रद्धावान् कराया तथा जगत्‌का पूज्य बनाया जोकि एक आदर्शनीय है।

सती-शिरोमणि

श्रीमती मैनासुन्दरी।

"साध्वी समीचीना सदा जिन भक्तिसे परि भाविता।
कर चक्रवर दृढ़ नेमसे पति प्रीतिसे परि प्लाविता॥
जिसने अलौकिक शक्तिसे पति कुष्टको वारण किया।
वह धन्य रमणी रत्न है श्रीपाल नृपवरकी प्रिया॥"

महारानी मैनासुन्दरी इसी भारतवर्षकी विश्वविदित उज्जैन नगरीके राजा पहुपाल की कनिष्ठा पुत्री थीं। इनकी ज्येष्ठा भगिनी का नाम सुरसुन्दरी था। दोनों राजकुमारियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध उनकी इच्छानुसार क्रमशः शैव और जैन पुरोहितको दिया गया। शिक्षा समाप्त हो चुकने पर इन्होंने यौवनावस्थामें पदार्पण किया। राजाको इनके विवाह की चिन्ता हुई और उन्होंने प्रथम ज्येष्ठा पुत्री सुरसुन्दरीको बुलाकर प्रश्न किया कि तुम्हारी अवस्था अब विवाह-योग्य

हो गई है; इसलिये तुम्हारी इच्छा किसके साथ विवाह सम्बन्ध करने की है सो कहो। तदनुसार कार्य किया जावे। कुमारीके उत्तरानुसार उसकी शादी कौशांबीपुरके राजकुमार हरिवाहनसे करनी निश्चय कर दी गई। इसी तरह राजाने दूसरी पुत्री मैनासुन्दरी को बुलाकर प्रश्न किया। परन्तु राजकुमारी मैनासुन्दरी बहुत ही लज्जावती और गुणवती कन्या थी। उसे यह लज्जारहित प्रश्न कुल वधुओंसे किया जाना अनुचित मालुम हुआ। इसलिये लज्जावन्त होकर उसने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। राजाके अनुरोधसे उसने विनय की कि उच्च कुलकी प्रतिष्ठित कुलांगनाएँ अपने पिता माताओंसे कभी अपने लिये वरकी इच्छा प्रगट नहीं करतीं। पिता-माता उनका जिसके साथ सम्बन्ध कर देते वही उनका सर्वस्व हो जाता है और उसीसे वे सन्तुष्ट रहती हैं। आपका मुझसे यह प्रश्न करना अनुचित है। राजा सुन्दरीके इस स्वाधीनता और महत्वपूर्ण उत्तर से तथा और भी कई उत्तरोंसे, जिनमें कि उसने सबसे श्रेष्ठ राजाको न बतलाकर अपने भाग्यको बतलाया था सुन्दरीसे असन्तुष्ट हो गया और क्रोधके आवेशमें आकर उसके भाग्य-गर्वको नष्ट करनेके लिये उचितानुचितका कुछ विचार न कर प्रयत्न सोचने लगा। राजाकी वह कुवासना इस तरह पूर्ण हुई :—

एक दिन राजा पहुपाल ससैन्य वनक्रीड़ा करता हुआ एक भयंकर जङ्गलमें आ पहुँचा जहाँ चम्पापुरका राजा

श्रीपाल अपने पूर्व्वजन्म कर्मोंके उदयसे कई अनुचरों सहित कुष्टरोगसे अत्यन्त पीड़ित हो अपने शरीरकी दुर्गन्धसे प्रजा जनोंको कष्ट न हो इसलिये चाचा वीरदमनको राज्यभार सौंप राजधानी छोड़ जङ्गल जङ्गल भटकता हुआ वहाँ ठहरा था। उसके शरीरकी दुर्गन्ध चारों ओर फैल रही थी। राजा पहुपाल राजा श्रीपालके अनुचरोंसे यह सब हाल जानकर अपनी कनिष्ठ पुत्री मैना सुन्दरीके भाग्य-रूपी गर्वका बदला चुकाने का अच्छा अवसर आया जान शीघ्र श्रीपालके पास गया और आदर सत्कारके पश्चात् कृत्रिम प्रसन्नता प्रगट कर अपनी सुकुमारी पुत्री मैनासुन्दरी देनेका सङ्कल्पकर उसे टीका कर दिया। राजा श्रीपाल इसका भेद न समझ बहुत प्रसन्न हुआ। यहाँ राजा पहुपालने राजप्रासादोंमें आकर सुन्दरीको उसके भाग्यकी प्रबलताका पराजय रूप यह समाचार सुनाया। परन्तु सुन्दरी ने यह सहर्ष मञ्जूर किया और शीघ्र अपने स्वामीसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित हुई। उसको किसी तरह का भी सङ्कल्प विकल्प नहीं हुआ। राजा पहुपाल कुमारीकी यह कृति देख और भी रुष्ट हुआ। राजमहिषी, प्रधान मन्त्री, प्रधान सेनापति, राजपुरोहित आदिके समझानेपर भी राजाने कुछ ध्यान न दे क्रोध व अहङ्कारसे उन्मत्त होकर शीघ्र ही शुभ तिथिपर कुमारीका विवाह उस कुष्ट रोगसे कुरूप हुए राजा श्रीपालसे कर दिया। कुमारीने अपने पिताकी आज्ञा को शिरोधार्य कर इस अयोग्य कार्य्यमें किसी तरहकी बाधा

नहीं दी और राजा श्रीपालको अपना स्वामी बनाया। उज्जैन के प्रजाजन इस सम्बन्ध पर बहुत असन्तुष्ट हुए तथा उन्होंने राजाको बहुत धिक्कारा। अन्तमें जब सुकुमारी सरला राजकुमारी मैनासुन्दरी रोगसे कुरूप पतिके साथ अपने महलोंसे विदा होकर पतिके स्थानको जाने लगी तब तो राजा पहुपाल के ज्ञानचक्षु खुल गये। उन्होंने अपने किये पर बहुत पश्चातावा किया और सुन्दरीसे क्षमा देनेकी प्रार्थना की। कुमारीने अपने भाग्यका ही फल समझ कर राजाको सन्तुष्ट किया और आनन्दसे पतिके साथ गई।

सुन्दरी स्वामीके शिविरमें आकर अपनेको कृत कृत्य समझने लगी। उसी दिनसे उन्होंने स्वामीके रोगकी निवृत्तिके लिये उपाय सोचना प्रारम्भ कर दिया तथा उनकी हर तरह से सेवा सुश्रूषा करने लगी। यद्यपि राजा श्रीपालने कुमारी मैना सुन्दरीको उसके रूप, यौवन, सुकुमारता पर ध्यान देकर तथा उस राजप्रासादोंमें सुखसे रहनेवाली कोमलाङ्गीको इस शिविरमें रहनेकी तकलीफोंपर ध्यान देकर उसे बहुत समझाया कि जबतक हमारा यह रोग दूर न होजावे तबतक तुम अपने पिता माताके पास सुखसे रहो। परन्तु सती साध्वी सुन्दरीने सब सुखोंसे श्रेष्ठ पति-सेवा ही समझ कर स्वामीके चरणोंकी सेवामें ही रहना श्रेयस्कर समझा।

एक दिन राजकुमारी मैनासुन्दरी उज्जैन में जिनमन्दिरों के दर्शनोंको गई। दर्शनोंके पश्चात् अपने पूज्य गुरुजीके

भी दर्शन किये और समय पाकर अपने स्वामीके रोगका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर उसकी निवृत्तिका कारण पूछा। गुरुजी बड़े प्रतिभाशाली पण्डित थे इसलिये उन्होंने कुमारी को सन्तोषित करके उसके स्वामीके शीघ्र आरोग्य होनेका हाल ज्योतिषसे देखकर बतलाया तथा कुमारीको अष्टाह्निक व्रत देकर उसके पालनेकी विधि बताकर विदा किया। अष्टाह्निक व्रतका समय आनेपर कुमारीने व्रतानुसार कार्य करना आरम्भ किया। प्रतिदिन वह जिन मन्दिरमें जाकर परवस परमात्मा वीतराग भगवानका पूजन स्तवन अभिषेकका गन्धोदक लेकर अपने पतिके शरीरमें लेपन करने तथा अन्य रोगियोंके ऊपर भी छिड़कने लगी। रोग धीरे धीरे आराम होता गया और अष्टाह्निक पर्वके अन्तिम दिन राजा श्रीपालका शरीर महा भयानक कुष्ट रोगसे सम्पूर्ण निवृत्त होकर बहुत ही सुन्दर हो गया। राजकुमारीके भाग्य की जय हुई और राजा पहुपालको नीचा देखना पड़ा। राजा श्रीपाल और कुमारी मैनासुन्दरी उज्जैनमें रहकर आनन्दसे समय व्यतीत करने लगे।

एक दिन रात्रिके समय जबकि चारोंओर शब्द लेश मात्र भी नहीं सुनाई देता था यकायक राजा श्रीपालकी नींद खुल गई और उन्हें अपनी जन्म-भूमि राज्य-कुल आदिकी चिन्ताने आ घेरा। उन्होंने विचारा कि अब मेरा यहाँ रहना अयोग्य है। मुझे अपने राज्य और वंशकी रक्षा करनी

चाहिये। परन्तु बिना ऐश्वर्य और वैभवके राजधानीमें जाना भी योग्य नहीं है। इसलिये मान प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिये प्रथम विदेशको जाना चाहिये। पश्चात् धन-धान्य आदिसे परिपूर्ण होकर स्वदेश जावेंगे। ऐसा विचार निश्चय कर उन्होंने अपनी भार्याको भी सुनाया। मैनासुन्दरी पहिले तो स्वामीके विछोहके दुःखोंका अनुभव कर बहुत दुःखित हुई। परन्तु फिर सोच-समझकर उन्होंने स्वामीको विदेश जानेकी अनुमति दी और अपनेको भी साथ ले चलनेका अनुरोध किया परन्तु विदेशमें होनेवाले दुःखोंका अनुभव कर राजा श्रीपाल मैना सुन्दरीको साथ न लेजाकर सिर्फ अकेले विदेश-यात्राको निकले और बारह सालके भीतर भीतर आनेका वादा कर गये।

स्वामीके विदेशगमन पश्चात् मैना सुन्दरी उनके वियोगसे अति दुःखित रहती थी। जब बारह साल पूर्ण होनेको आये तब वह स्वामीके आनेके दिन घण्टे घण्टे और पल पल गिनने लगीं। बारह साल पूर्ण होगये परन्तु स्वामीके दर्शन नहीं हुए। महापतिव्रता सती मैना सुन्दरीको प्राणान्त कष्ट हुआ। परन्तु वीतराग भगवान्‌का ध्यानकर उन्होंने निश्चय किया कि अगर आज भी स्वामीके चरणारविन्दोंके दर्शन नहीं हुए तो फिर इस संसारके सर्व झञ्झटोंको छोड़ जिन दीक्षा धारणकर आत्मकल्याण करूँगी। परब्रह्मपरमात्माने उस सतीको आति ध्वनि सुनकर शीघ्रही उसके पतिको दीक्षा

दी। उसी दिन महाराज श्रीपाल असीम साहस और विपुल विभूति तथा आठ हजार रानियोंके साथ उज्जयनी नगरीमें आये। मैनासुन्दरीके आनन्दसागरका किनारा नहीं दीखता है। स्वामीके दर्शनकर उसने अपने नेत्र तृप्त किये। कुछ दिन उज्जयनीमें रहनेके पीछे महाराज श्रीपालने दल बल सहित अपनी प्राचीन राजधानी चम्पापुरको कूच किया तथा अपने राज्यको सम्हालकर फिर सुवर्ण और हीरोंके दीप्त सिंहासनपर विराजे। मैना सुन्दरीने अपने रूप गुण आदिसे राजमहिषीका आसन ग्रहण किया और फिर दोनों राजा रानी सुखसे समय बिताने लगे।

एक दिन सन्ध्या समय जब कि महाराज श्रीपाल अपने महलकी छतपर बैठे हुए प्रकृतिकी शोभा देख रहे थे कि उनको एकाएक मेघपाल छिन्न भिन्न होते हुए दिखाई दिया। उनको ज्ञान हुआ कि इसी प्रकार यह संसार भी क्षणभंगुर है। यह सब एक न एक दिन नष्ट होनेवाला है—मेरा शरीर भी इसी प्रकार एक दिन नष्ट हो जायगा। परन्तु अभीतक मैंने अपनी आयुका सब समय सांसारिक सुखमेंही व्यतीत किया है! परमार्थके सुखके लिये मैंने कोई उद्योग नहीं किया। इसलिये मुझे अब परमार्थ सुधारनेमें प्रयत्नशील होना चाहिये। उनको इस संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और शीघ्र जिन दीक्षा धारणकर वे अपने कर्म शत्रुओंको पराजय करने लगे। स्वामीको जिन दीक्षा लेते देख रानी मैना सुन्दरीने

भी जिन दीक्षा लेकर अपना परमार्थ सुधारनेमें मन लगाया। थोड़ेही दिनोंमें राजा श्रीपाल अपने कर्म शत्रुओंको जीत केवल ज्ञान प्राप्त कर अनन्त अविनाशी परम सिद्धपदके अधिकारी हुए जहाँ सदा असीम आनन्द रहता है। मैना सुन्दरी भी सबसे उत्कृष्ट १६ वें स्वर्गकी अधिकारिणी हुई। अर्थात् सब वेद यही कहते हैं कि नारियोंके लिये आराध्य देव पतिही है तथा पतिहीको वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश जानती हैं, हमारे यहाँ भी आचार्योंने पतिभक्तिके विषयमें कुछ कहा है। वह यह है कि—"पतिप्राणा हि योषितः।" अर्थात् नारियोंके प्राण पति ही हैं। यही कारण है कि मैना जैसी सुन्दरीने कोसों तक दुर्गन्ध फैलानेवाले कुष्ट रोगसे पीड़ित पति श्रीपालकी प्राणोंकी तरह रक्षा की। शोक और खेदका विषय है कि आज यह बातें केवल इतिहासकी कथा मात्र रह गई हैं। संसारमें पति और पत्नी विद्यमान हैं पर पति पत्नीका वह भाव नहीं है—वह मेल मिलाप नहीं है। अगर है तो पारस्परिक कलह और ईर्ष्या। इस दुर्घट समयमें समाजकी रक्षा परमात्माही करे।

पाठक और पाठिकागण! इस चरित्रमें आपने अच्छी तरह देख लिया होगा कि स्वार्थके वश होकर माता और पिता भी अपनी प्रिय सन्तानके साथ कितना अनिष्ट और कैसे कैसे निन्द्य दुष्कर्म कर सकते हैं। जब स्वयं जनककी यह दशा है तो अन्य जन अन्यजनोंकी सन्तानके प्रति जो-

अन्याय और अत्याचार करें उसकी कोई गणना नहीं की जा सकती है। यह उदाहरण आजकलका नहीं किन्तु आजसे कई हज़ार वर्ष पहलेका है। इससे इस बातका भी पता लगता है कि आजही नहीं पहले ज़मानेमें भी इस पृथ्वीमण्डलपर ऐसे ऐसे नराधमोंने जन्म लेकर मानव समाजके इतिहासको कलङ्कित किया है। फ़र्क़ केवल इतनाही है कि पहले ज़मानेमें ऐसे नर पिशाचोंका दर्शन कहीं कहीं पर और कभी कभी होता था और आजकल सब जगह और बहुलतासे इन दुष्टोंकादौरदौरा है। भगवान् ऐसे पिताओंसे बचाये!

हमारे पाठकोंने इस चरित्रमें मैना सुन्दरीकी पतिभक्ति परायणता, पिताकी आज्ञाकारिता और स्वाभाविक सहनशीलताका एकही उदाहरण देखा होगा जो अन्यत्र कम पाया जाता है। हमारे अन्यमतावलम्बी भाइयोंने पतिभक्तिके विषयमें ऐसा कहा है कि :—"नारिनको पति देव वेद सब यही बखाने। ब्रह्मा विष्णु महेश नाहि पतिहीको आनें॥"

५

वीर नारी रानी द्रौपदी।

"वीरांगना श्री द्रौपदी के सुयश जलसे लहलहा।
यह होरहा है आजतक भारत विटप कुसुमित अहा!
अद्‌भुत अलौकिक धर्म उनमें शौर्य था त्यों आत्मबल।
जो घोर दुखमें भी किये विध्वंस अरिदल आति प्रबल॥"

श्रीमती द्रौपदीजी राजा द्रुपद तथा महारानी भोगवतीकी प्रिय सुता थीं। इनका जन्म माकन्दीपुरमें हुआ था। बाल्यावस्थासे लेकर इन्होंने बड़े बड़े शक्तिशाली और पूर्ण बुद्धिमत्ताके कार्य किये थे। इनके रूप, गुण, सहन शक्ति आदिका वर्णन अकथनीय है। ये परम विख्यात सती भारतको अपने सुगुणोंकी प्रशंसासे उज्वल कर गई हैं। इनका संक्षेपचरित्र इस प्रकार है:—

जब श्रीमती द्रौपदीजी बाल्यावस्थाको पूर्ण करती हुई यौवनावस्थामें पैर धरने लगीं तब राजा द्रुपदको इनके विवाहकी चिन्ता हुई। राजा विशेष उद्योग कर भी न पाया था

कि खलाचल पहाड़पर रहनेवाले सुरेन्द्र नामक एक विद्याधरने आकर एक धनुष और एक कन्या राजा द्रुपदको सौंपी और कहा कि—"महाराज मैंने भविष्यद्वक्तासे पूछा था कि मेरी कन्याका वर कौन होगा। उन्होंने कहा कि जो राजकन्या द्रौपदीका वर होगा, जो इस गाण्डीव धनुषको चढ़ावेगा वही व्यक्ति तेरी सुताका भी स्वामी होगा।" ऐसा कह और गाण्डीव धनुष तथा अपनी कन्याको वहाँ रख विद्याधर अपने निवास स्थानको रवाना हो गया। इधर राजा द्रुपदने भी यह बात पसन्द की। गाण्डीव धनुष बड़ा भारी और बड़े तेजवाला धनुष था। उसको उठा लेना सहज न था। बड़े पराक्रमी शूरवीर भाग्यशालीका कार्य था। इसलिये परीक्षा करके ऐसेही वरको द्रौपदी देनी उचित समझ राजा बहुत प्रसन्न हुआ। शुभमितिपर स्वयम्बरकी रचना की गई और देश देशके राजकुमारोंको निमन्त्रण भेजा गया।

श्रीद्रौपदीजीकी प्रशंसा सर्वत्र इतनी फैल रही थी कि निमन्त्रण पातेही चारों तरफ़से बड़े बड़े राजपुत्र दौड़े चले आये। कोई उच्च राजपुत्र ऐसा न था जो इस स्वयम्बरमें न आया हो। कौरव दुर्योधनादि सौ भाई भी बड़े ठाट बाटसे आकर स्वयम्बर-मण्डपमें बैठे। इन्हींके चचेरे भाई राजा पाण्डुके पुत्र महाबली युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव ये पाँचो पाण्डव भी छिपकर ब्राह्मणके भेषमें आकर स्वयम्बर-मण्डपमें एक तरफ बैठ गये।

सम्पूर्ण सभा जमनेपर एक एक नृपति धनुषको चढ़ानेके लिये उठे परन्तु चढ़ाना दूर रहा उसके तेजको न सह सकनेके कारण धनुषके पास भी न जा सके। राजकन्या द्रौपदी भी अपनी प्यारी सखी सुलोचनाके साथ घूमती हुई इन नृपोंका कौतुक देख रही थी। उक्त सखी क्रमशः एक एक राजपुत्रको मय नाम पतेके बताती जाती थी और द्रौपदीजी मनही मन सबकी जाँच करती जाती थीं।

जब गाण्डीव धनुष किसी राजकुमारसे नहीं उठा तो राजा द्रुपद कुछ चिन्तातुर हो गये कि इतनेमेंही ब्राह्मण वेषधारी युधिष्ठिर महाराजने अपने भाई अर्जुनको आज्ञा दी कि "तुम शस्त्रविद्यामें अद्वितीय हो? उठो और धनुष चढ़ाकर सर्वोत्तम गुणरूपकी राशि द्रौपदीको वरो।" बस भ्राताकी आज्ञानुसार अर्जुन महाराजने झट धनुषके निकट जाकर धनुषको चढ़ा लिया और ऐसा वेध किया मानो नियत मोतीपर निशाना मार दिया। इनके धनुषकी ऐसी घोर आवाज़ हुई जो सैकड़ों हज़ारों तोपोंसे भी तेज़ थी। सब सभास्थ राजकुमारोंके कान भन्ना गये मानो बहरे हो गये। बस शीघ्रही श्रीमती द्रौपदीजीने वरमाला (पुष्पकी माला) अर्जुनके गलेमें अति प्रसन्न चित्तसे डाल दी। कोई कोई ऐसा कहते हैं कि द्रौपदीजीके पाँचो पाण्डव पति थे यह बात सर्वथा ग़लत और जैन शासनसे विरुद्ध है। ये तो परम सती थीं। विवाह एकके ही साथ हो सकता है। इनके

एक अर्जुनही पति थे। द्रौपदीजी बड़ी चतुर थीं। उन्होंने प्रथमही सर्व राजकुमारोंसे विशेष अर्जुनकोही समझ लिया था। औरोंकी चमक दमककी परवाह न कर गुणोंकोही ग्रहण किया था।

इस सम्बन्धको देख दुर्योधनादि बड़े बड़े राज-कुमार बहुत बिगड़े, बहुत युद्धादि करने लगे; परन्तु सफलीभूत रत्ती मात्र भी न हुये। अर्जुन तथा द्रौपदी के भाई धृष्टदमनने सबको परास्त कर भगाया। इस युद्धादिसे द्रौपदीजी भी नहीं घबराईं। उन्होंने भी साथ साथ पति तथा भाईको सहायता दी(पूर्वकालमें राजकन्या भी शस्त्र-विद्याका अभ्यास रखती थीं) अन्तमें नियत मितीपर द्रौपदीजीकी पाणिग्रहण विधि सानन्द संपूर्ण हो गई और ये दम्पति गजपुरमें आकर आनन्दसे रहने लगे, गजपुरका आधा राज्य इन पाण्डवोंके आधीन था आधा कौरवोंके।

द्रौपदी अर्जुनके अपूर्व आनन्द से कौरव सदा जलते रहते थे और नित्य नये उपद्रव करते रहते थे।

एक समय कौरवोंके मुखिया दुर्योधनने दुष्टाभिप्रायसे जूएका खेल प्रारंभ किया और उसमें पाण्डवोंको भी शनैः २ फँसा लिया। छल बलसे विचारे पाण्डव सब बाज़ी हार गये और इस इक़रार पर खेल तय हुआ कि १२ वर्ष तक पाण्डव छिपे बनमें रहें बाद आकर राज्यादि करें और नहीं तो नहीं।

इस समय द्रौपदी रानीको बड़े बड़े उपद्रवों द्वारा दुर्योधनने बहुत कष्ट पहुँचाया परन्तु सती द्रौपदीने समयानुकूल सब कुछ सहकर पति आदि पाण्डवोंका साथ किया। इन्होंने जाकर वनमें निवास करने लगी। वहाँ जाकर भी दुर्योधनने युद्धादि किया।

अन्तमें १२ साल बीत चुकने पर जब एक साल रह गया तब इन पाँचों पाण्डवोंने सोचा कि अब १ वर्ष बिल्कुल गुप्त रीतिसे रहकर अन्तमें कुछ अपना प्रभाव किसी विदेशी राजा को दिखा कुछ यश-गौरव सम्पदा लेकर घरको जाना है अतः सबसे सलाह की कि भेष बदल कर विराटपुरके राजा सुदर्शनके यहाँ नौकरी करें।

द्रौपदीजी भी अपने पति की अनुगामिनी थीं। उन्होंने भी राजाके यहाँ मालिन का काम करना पसंद किया। अर्जुनने नृत्य सिखलानेका, भीमने रसोई करनेका, नकुलने घुड़सालका, सहदेवने गोधनका और युधिष्ठर महाराजने पुरोहित का काम पसन्द किया। सब मिलकर राजा विराटके यहाँ रहने लगे और अपने अपने काममें अद्भुत चतुराई दिखाने लगे। द्रौपदीजी मालिन के भेषमें रहकर बड़ी योग्यतासे पुष्प गूंथती थी। इनके माला हारादि इतने सुन्दर सुडौल बनते थे, कि राजा सुदर्शनकी महिषी चकित हो जाती थीं, सोचती थीं कि यह चतुर मालिन कौन है? एक दिन राजाका साला कीचक पाहुना आया था। वह द्रौपदीजीके बने पुष्पहारको

देखकर चकित हो गया। उसी समय से उसके हृदयमें कुविचारोंने आवागमन जारी कर दिया। अन्तमें द्रौपदीजीको उस ने देखा और उन पर मोहित होगया। उस दुष्टने एकान्तमें द्रौपदीजीसे प्रार्थना की कि आप मेरी पटरानी बनने योग्य हैं। मेरे साथ चलिये, मुझपर प्रसन्न हूजिये, इत्यादि इत्यादि दीनताके वचन कहे तथा भय भी दिखाया। इस दुष्टके उपर्युक्त वचनोंको सुनकर द्रौपदी सतीके हृदय पर वज्रघात से भी अधिक चोट पहुँची। वे विचारने लगीं कि अहो! यहाँपर भी चैन न मिला। किस तरह शीलरत्नकी रक्षा होगी इत्यादि विचारोंसे उक्त सतीका हृदय कम्पित हो गया परन्तु "समय पड़ने पर अबला सबसे सबला हो सकती है।" इस वाक्यानुसार द्रौपदीजी सचेत होकर कीचक दुष्टको झाड़ने लगीं।

उन्होंने तीव्र क्रोधमें आकर कीचकको खूब आड़े हाथों लिया। खूब कटुवचनोंकी बौछार की जिससे कीचक निराश हो स्वस्थान को लौट आया।

कीचक दुष्ट उसी दिनसे खान पानादि छोड़ अपनी महानिन्द्य वासनाकी पूर्त्ति के उपाय सोचता हुआ शय्या पर दिन काटने लगा।

इधर द्रौपदीजीने अर्जुनसे अपनी अपार दुःखावस्थाका वर्णन किया जिससे उनको बड़ा क्रोध उपजा; परन्तु भेद खुलनेपर अपना छिपना दुःसाध्य जानके चुप रह गये और कह सुनकर द्रौपदीजीको धैर्य बँधाने लगे। द्रौपदीजीको पति

के कहेसे धैर्य नहीं हुआ। उन्होंने भीम महाराजसे सब वृत्तान्त कहा—भीमने कहा कि सती तुम पश्चाताप मत करो। हम अप्रकट रूपसेही कीचक दुष्टसे बदला लेंगे। इन्होंने एक युक्ति निकाली यानी द्रौपदीजीसे कहा कि तुम कीचकसे आज रात्रिको किसी स्थान पर आनेका संकेत करदो, बस जब वह दुष्ट वहाँ आवेगा मैं स्त्रीके भेषमें उसे जा पछाड़ूँगा, द्रौपदी जी ने ऐसा ही किया।

रात्रिके समय कीचक पापात्मा उत्कटतासे नियत स्थान पर गया। वहाँ कृत्रिम द्रौपदी (भीम) ने उसे धर पछाड़ा। उसके दूषित मनोभावका प्रत्यक्ष फल दिखला दिया।

अपना काम कर (कीचकको मार) भीम स्वस्थानको आगये और द्रौपदीजीसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। प्रातःकाल कीचकको द्रौपदीके कारण मरा जान उसके सौ भाइयों ने बड़ा दङ्गा मचाया। द्रौपदीजीको पकड़कर त्रास देना शुरू किया। यह देख भीम महाराजने फिर युद्ध किया और कीचकके सब भाइयोंको हरा दिया। अबके युद्धसे सबको थोड़ा थोड़ा पता लग गया कि ये पाण्डव हैं। इधर इन लोगों का १ वर्ष भी पूरा हो गया था। ये प्रगट होना ही चाहते थे कि कौरवोंने फिर युद्ध किया। अन्तमें पाण्डवोंकी ही जीत हुई और जय पताकाके साथ फिर इन लोगोंने अपने पुरमें प्रवेश किया।

कुछ दिन पति आदि समस्त कुटुम्बियोंके साथ सानंद

व्यतीत होने ही पाये थे कि सती द्रौपदीको एक विपत्तिका फिर सामना करना पड़ा।

एक दिन रानी द्रौपदी सिंहासन पर बैठी थी कि नारद जी आये उनको देखकर द्रौपदीजी उठ न सकीं और न प्रणाम ही किया। वे अपने शृंगारमें लगीं थी।

यह बात नारदको बहुत बुरी लगी। वे शीघ्र ही वहाँसे लौट गये और मनमें द्रौपदीको नीचा दिखानेका विचार कर के घातकीखण्डस्थ सुरकंकापुरीके राजा पद्मनाभके यहाँ आकर उसे द्रौपदी रानीका चित्र दिखा दिया। इस कौतुकको कर नारद तो लम्बे पड़े, परन्तु राजा पद्मनाभका चित्त भ्रष्ट हो गया। उसके यहां बड़ा अनर्थ हो गया। राजाने बड़े बड़े कठिन परिश्रमोंसे किसी देवको वश कर रानी द्रौपदीजीको सोते हुए पलँग सहित अपने यहां मंगा लिया।

बेचारी निष्पाप द्रौपदी कुछ भी नहीं जानती थी कि मेरा हरण कौन दुष्ट कर रहा है, मुझपर कौनसी विपत्ति आरही है। इस सतीको यकायक निद्रा टूटी तो देखती है कि एक राजा इसकी शय्यापर बैठा बैठा बड़े हाव भावके वचन बोल रहा है। द्रौपदीजीने ख्याल किया कि शायद मैं स्वप्न देख रही हूँ इससे उन्होंने पुनः मुख ढंक लिया। पास बैठा दुष्ट पद्मनाभ इस भेदको समझ गया। उसने कहा "उठो प्रिये! निद्रा तजो यह स्वप्न नहीं है" इत्यादि इत्यादि वचन कहे। इन्हें सुनकर द्रौपदीजी प्रतिबोधित हो गईं। सब मामला

समझमें आ गया। आह! आज कैसा उपसर्ग इस सतीके ऊपर हो रहा है। ये बड़े आर्त्तनादसे विलाप कर रोने लगीं, इनकी गगनभेदी आवाज़से पद्मनाभका सारा महल फटने लगा। मानो काष्ठ पत्थर भी रोदन करने लगे। उक्त सतीने पद्म-नाभको विलाप के साथ साथ बहुत कुछ समझाया परन्तु यह पापार्थी कब शान्त होनेवाला था। अन्तमें जब देखा कि अन्य उपाय रहित होनेपर द्रौपदी प्राण दे देगी तब वह दुष्ट उठ-कर चला गया और यह कह गया कि १ मासमें ज़रूर प्रसन्न हो जाना।

द्रौपदीजीने ख्याल किया कि एक मास बहुत है। इसमें धर्म साधनादि कितनेही उपाय मैं भी कर सकूँगी और योद्धा पाण्डव भी आकर इस दुष्टका अवश्य ही निग्रह करेंगे। बस इस विचारसे वे खान पानादि त्याग जिन मन्दिरमें चली गईं और अत्यन्त विश्वास-साहस सहित भगवद् ध्यान करने लगीं।

इधर पाण्डवोंने देखा कि द्रौपदी का हरण हो गया, इस घटनासे सारे राज्यमें शोक मच गया। अर्जुन महाराज पत्नी वियोगसे अति दुःखित हो गये, परन्तु फिर साहस कर पांचों भाई खोजने निकले। अनेक युक्तियोंसे काम लेते लेते तथा उन्हीं नारद महाराजकी उलटी दयादृष्टिसे द्रौपदीका पता लग गया। वहाँ सुर कंकापुरी में जाकर खूब रण हुआ और अन्तमें पद्मनाभको हरा जिन मन्दिरस्थ द्रौपदीको लेकर घर आगये।

अब फिर द्रौपदीजीके दिन आमोद प्रमोदमें व्यतीत होने लगे। कई पुत्र रत्न उत्पन्न हुए और परम नीति मार्गसे सांसारिक सुख भोगने लगीं।

बहुत दिन इस अवस्थामें बीते। एक दिन श्रीनेमिनाथ स्वामीका समवशरण धर्मोपदेश करता हुआ आया। वहां जाकर पाण्डवोंने धर्मोपदेश तथा अपनी भवान्तरी सुनी, जिससे पांचों भाई परम वैराग्य रसमें डूब गये और भगवान नेमि प्रभुके सामने समस्त गृह जञ्जाल को छोड़ वीतरागी दिगम्बरी दीक्षा धारणकर आत्महित करने लगे। पतिकी यह अवस्था देख द्रौपदीरानी ने भी श्रीराजुल मती अर्जिकाके निकट जा दीक्षा धारण करली और परम उग्रतप करने लगीं। अहा! जो शरीर परमोत्कृष्ट भोगोंमें रमा था, वही आज आत्म ध्यानके रसमें पगा उग्रोग्र तप कर रहा है। कुछ दिन तप जप करके अन्तमें समाधि मरण कर श्रीमती द्रौपदीदेवी सोलहवें स्वर्गमें देवी हुईं और वहाँसे चलकर क्रमशः मोक्षकी पात्री हुई।

साधुचरित्रा
रानी अंजनासुन्दरी।

"सहन शीलता की प्रति मूर्ति धन्य धन्य तुम ।
पती रता सातियोंमें "अञ्जनि' अग्र गन्य तुम ॥
वाइस वत्सर पाति विछोहका कष्ट सहन कर ।
धन्य निबाहा पातिव्रत पावन आति सुन्दर ॥"

रानी अञ्जनासुन्दरी महेन्दुपुर (दक्षिण हिन्दुस्थान) के राजा महेन्दु और रानी हृदयवेगाकी परमप्यारी पुत्री थीं। पद्म-पुराणमें लिखा है कि बाल्यावस्थामें इनको अन्य सब विषयोंकी शिक्षाओंके अतिरिक्त गान्धर्वकला तथा धर्मशास्त्रकी शिक्षा पूर्ण रीतिसे दी गई थी। योग्य युवावस्था होनेपर पिता माताने इनका विवाह आदित्यपुरके राजा प्रह्लाद और रानी केतुमतीसे उत्पन्न वायुकुमार (पवनकुमार)से करना निश्चय किया। कुमारने अपनी भावी प्रियतमाके रूपगुण और शिक्षाकी प्रशंसा सुनकर गुप्तरीतिसे उससे मिलनेकी

इच्छा की। तथा वे शीघ्र अपने एक मित्रके साथ वायुयान द्वारा आदित्यपुरसे महेन्द्रपुरको रवाना हुए। महेन्द्रपुर पहुँच अञ्जना सुन्दरीके महलके सप्तम खण्डपर जहाँ कि सुन्दरी अपनी सखियों सहित बैठी मनोरञ्जन कर रही थी आकर छिप रहे तथा उस मण्डलीकी गुप्त वार्त्ता सुनने लगे। समय भी वही था इसलिये सखियाँ सुन्दरीकी शादीपर अपने अपने विचार प्रकट कर रही थीं। अभाग्यवशात् एक उसकी अदूरदर्शी सखीने जो कि सिर्फ रूपपर न्योछावर होकर कुमारीकी शादी किसी अन्य कुमारके साथ कराना चाहती थी प्रस्तावित सम्बन्धपर अपना असन्तोष प्रगट किया। स्वाभाविक लज्जावश सुन्दरीने प्रगट रूपसे इसका कोई विरोध नहीं किया ; परन्तु वायुकुमार जो इस संवादको सुन रहे थे अपना अपमान समझ दुःखित हुए। उनको यह भी भ्रम हो गया कि सुन्दरीको मेरे साथ सम्बन्ध करना स्वीकार नहीं है इसलिये उन्होंने सखी द्वारा मेरी निन्दा सुनकर उसका विरोध नहीं किया। इस कल्पनाने कुमारके हृदयपर अपना अधिकार जमा लिया तथा कुमारीकी तरफसे अरुचि उत्पन्न करा दी। मित्र सहित ये शीघ्र अपने स्थानपर आये और सुन्दरीसे सम्बन्ध न करनेकी प्रतिज्ञा की। उक्त गुप्त समाचार किसीको मालूम नहीं हुआ।

दोनों राजाओंने पाणिग्रहणकी तिथि निश्चय करा ली थी। अतः नियत तिथिपर विवाहकी सब कार्रवाइयाँ होने

लगीं। कुमारने बहुत इधर उधर किया, परन्तु पिता माताके अनुरोध तथा सास ससुरके समझानेसे उन्होंने सुन्दरीके साथ सम्बन्ध करना स्वीकार कर लिया और नियत तिथिपर सम्बन्ध हो गया। यद्यपि कुमारने पिता माताके कहनेसे सुन्दरीसे शादी करली परन्तु उनका चित्त उससे विरुद्ध ही रहा। सुन्दरी जब अपने पतिके भवनमें आई और उसे स्वामीके रुष्ट होनेका समाचार ज्ञात हुआ तब उसे जितना दुःख हुआ वह लिखा नहीं जा सकता। वह भोजन,वस्त्र, शृङ्गार आदिसे उदासीन होकर दिन रात अपने सर्वस्व पतिके प्रसन्न करनेमें लगी रहती थी; परन्तु स्वामीका सन्देह किसी तरह निवृत्त नहीं हुआ। उन्होंने कभी सुन्दरीपर प्रेमकी दृष्टिसे भी नहीं देखा। इस तरह सिर्फ स्वामीके नामका स्मरण करते हुए उस सर्वाङ्गसुन्दरी सतीको २२ साल हो गये! शरीर चिन्तासे कृश होते होते बिल्कुल मुरझा गया। इस दुःखरूपी समुद्रको पार करना सुन्दरीके लिये असम्भव हो गया और वह निराश होकर अपने जीवन सूर्यको अस्ताचलपर पहुँचा समझ चुकी थी कि यकायक अपने पूर्वकृत पुण्य कार्योंके प्रतापसे उसके सौभाग्यका सूर्य चमक उठा, जिसका वृत्तान्त नीचे दिया जाता है :—

महाराज प्रह्लादकी राजसभामें लङ्केश्वर रावणका दूत वरुणके साथ युद्ध करनेमें सहायता देनेके लिये रणनिमन्त्रण लेकर आया। महाराजने इसे सहर्ष अङ्गीकार किया और

उसी समय फौजी तय्यारीकी आज्ञा देदी। कुमारकी युवावस्था थी। युद्धकी घोषणा सुनकर उनका तेज उमड़ पड़ा। शीघ्र पिताकी सेवामें उपस्थित होकर निवेदन किया कि इस कार्यके लिये आप क्यों तकलीफ़ करते हैं? मुझे युद्धमें जानेकी आज्ञा दीजिये। आपके आशीर्वादसे मैं शीघ्र विजयलक्ष्मी प्राप्तकर आपके दर्शन करूँगा। पिताने पुत्रको युद्धोचित शिक्षाएँ देकर युद्धस्थलमें जानेकी आज्ञा दी। कुमार भी रणके वस्त्र पहन, अस्त्र शस्त्रों से सज्जित हो एक उत्तम घोड़ेपर सवार हुए और कूचका शब्द कर महलसे बाहर होनाही चाहते थे कि उन्होंने परम साध्वी सुशीला सती अञ्जना सुन्दरीको, दरवाज़े पर खड़ी दर्शनोंकी प्रतीक्षा में देखी। कुमारको यह कार्य अच्छा नहीं मालूम हुआ और सुन्दरीकी विनयपर कुछ ध्यान न देते हुए वे अपनी सेनामें चले गये। सुन्दरीके हृदयपर दुःखोंका पहाड़ टूट पड़ा है। जिस स्वामीके कुशल समाचारोंपरही वह जीवन धारण किये हुए थी आज वे युद्धमें चले गये हैं। नहीं कहा जा सकता है कि इस पर्यायमें फिर स्वामीके दर्शन हो सकेंगे वा नहीं इत्यादि विचारोंको करती हुई भारतके गौरवकी प्रदीप्त करनेवाली एक परम सुन्दरी सती अपने भाग्यको दोष देती हुई विलाप कर रही है। सिवा वीतराग चिदानन्द परमात्माके ध्यानके उसको उसके इस असह्य दुःखसे निवृत्त करनेवाला कोई दिखाई नहीं देता है।

महाराज प्रह्लादके सुपुत्र वायुकुमारकी सेना दिनमें चलते चलते सन्ध्याको एक सरोवरके निकट डेरे डालकर विश्राम करनेके लिये ठहर गई। कुमार भी अपने डेरेमें विश्राम करनेके लिये ठहरे। कुछ जलपान करके शामके अपूर्व समयमें सरोवर और प्रकृतिका सौन्दर्य देखनेके लिये कुमार अपने मित्र सहित टहलनेके लिये खेमेसे बाहर हुए। खेमेसे बाहर निकलतेही प्रकृतिने उन्हें वह उपदेश दिया जो हजारों उपदेशोंसे भी नहीं दिया जा सकता, जिस की प्रशंसा नहीं की जा सकती। जिस विषयके ज्ञानके विषयमें इनके हृदयमें बिल्कुल अन्धकार था एकाएक ज्ञानका सूर्य दीप्त हो गया। इन्होंने देखा कि एक चकवी रात्रि आनेके कारणसे अपने पतिसे विछोह होनेका समय देख अत्यन्त दुःखके साथ कोलाहल मचा रही है। अब इनको ज्ञात हुआ कि जिस तिर्यञ्चपक्षीको मनुष्यकी अपेक्षा लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है अपने प्रियका वियोग होनेमे इतना कष्ट होता है जिसका अन्त नहीं है तो फिर मेरी प्यारी पत्नी अञ्जना सुन्दरी को, जिसको मैंने २२ साल हो चुके बिल्कुल त्याग दिया है क्या दशा होगी ? उसके दुःखोंका वर्णन करनेको क्या इस भूमण्डलमें कोई समर्थ है ! प्रकृतिने उत्तर दिया—नहीं ! उसी समय इनको अञ्जनाके युद्धके कूचके समय आनेकी बात याद आई, जिससे इनका शरीर विह्वल हो गया। प्रेमाश्रुसे नेत्र परिपूर्ण हो गये। मित्रसे इन्होंने अपना विचार

उसी समय अञ्जना सुन्दरीसे मिलनेका प्रगट किया और गुप्त रीति से रात्रिहीमें अञ्जना सुन्दरीके महलोंमें आये। सुन्दरीका हृदय आनन्दसे प्रफुल्लित हो गया। उसके आनन्दका अनुभव पाठकही कर लेवें। मुझमें शक्ति नहीं है जो आप को लिखकर बता सकूं। उस रात्रिको कुमारने अपनी प्यारीसे अपने हर तरहके अपराधोंके लिये अति नम्रहो क्षमा माँगी तथा अपनेको बहुत दोष दिया। परन्तु सुन्दरीने उनके भ्रम का जड़ मूलसे उच्छेद कर अपनेही पूर्वकृत कर्मोंका दोष बतलाया। पश्चात् पति-पत्नीने आनन्दसे रात्रि पूर्ण की। सुबह होतेही कुमार सुन्दरीसे विदा होने लगे तब सुन्दरीने विनय-पूर्वक प्रार्थना की कि मेरा ऋतुकालका समय है सम्भव है कि मुझे गर्भ रह जाय और आप युद्धमें जा रहे हैं इसलिये समय भी आपको ज्यादः लगेगा इससे आप अपने पिता माताको अपने आनेकी सूचना करते जाइये। परन्तु कुमारने लज्जावश ऐसा करना पसन्द नहीं किया और कहा कि अगर ऐसा हुआ तो कोई हर्ज नहीं है। युद्धमें हमको ज्यादः समय नहीं लगेगा, हम शीघ्र आवेंगे। तुम किसी तरहकी चिन्ता नहीं करना। इत्यादि हर तरहसे सन्तोषितकर प्रेमालिङ्गनकर विदा हुए तथा सुबह होते होते अपनी सेनामें पहुँचे। यह हाल किसीको ज्ञात नहीं हुआ।

वायुकुमार युद्धस्थलमें पहुँचे। लड़ाई हुई। अन्तमें वायु-कुमारने अपने प्रबल प्रतापसे शत्रुको पराजित किया और

विजयलक्ष्मी प्राप्तकर अपने देशको ओर रवाना हुए। समय बहुत हो गया था। यहां अञ्जना सुन्दरीको वास्तवमें गर्भ रह गया और दिन दिन रूपकी वृद्धि होने लगी। यह समाचार सारे रनवासमें फैल गया। राजमहिषीको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने कुलमें कलङ्क समझ बहुत दुःख प्रगट किया तथा अञ्जनासुन्दरी को अपने पिता माताके यहां पहुँचानेका विचार किया। अञ्जना सुन्दरीने बहुत कुछ कहा परन्तु उसको राजमहिषीद्वारा यही उत्तर मिला कि मेरे पुत्रने तो तुझे २२ वर्षसे त्याग दिया है और वह युद्धमें गया है फिर तेरे पास क्यों आवेगा? अन्तमें निराश होकर सुन्दरीको अपने पिता माताके यहां जाना पड़ा। पिता माताने भी इसको कलङ्किनी समझ अपने महलोंमें आश्रय नहीं दिया। इस तरह अञ्जना सुन्दरी सती अपनी एक प्यारी सखीके साथ अपने पूर्वकृत कर्मोंके प्रतापसे तरह तरहके दुःख भोगती हुई जङ्गलोंमें फिरती फिरती एक गुफामें रहने लगी। वहींपर उसने परम प्रतापी जगद्विख्यात हनूमानको प्रसव किया।

अञ्जना सुन्दरी अपनी सखी सहित अनेक दुःखोंका सामना करती हुई पुत्रको पालने लगी। एक दिन सुन्दरी अपने स्वामीको यादकर जब फूट फूटकर रो रही थी तब हनूरुह द्वीपका राजा प्रतिसूर्य जो वायुयान द्वारा उस गुफाके ऊपरसे जा रहा था अचानक इस निर्जन जङ्गलमें

कर्णभेदी रोनेका शब्द सुन नीचे उतरा। गुफामें आकर वृत्तान्त सुना। ज्ञान होनेपर उसने अपनी भाञ्जीको हृदयसे लगा लिया और हर तरहकी शान्ति देकर अपने साथ वायु-यानमें बिठाकर अपने द्वीपमें ले गया। वहाँ पुत्रका जन्मो-त्सव कर आनन्द मनाया तथा अञ्जना सुन्दरीको अच्छी तरह रखा।

यहाँ जब वायुकुमार विजयलक्ष्मीका मुकुट पहने हुए अपनी प्यारी अञ्जना सुन्दरीसे शीघ्र आकर मिलनेकी इच्छा किये हुए आदित्यपुरमें आये और नगरनिवासियोंसे अपनी प्यारीका कलङ्कित होकर माता पिताके यहाँ जाना सुना तो शीघ्र दु:खित होकर महेन्द्रपुरका रास्ता लिया। परन्तु जब वहाँ भी उसके दर्शन नहीं हुए तो अतिही खेदित होकर जङ्गलोंमें अपनी प्यारीकी खोज करते हुए उन्मत्तकी नाईं फिरने लगे। यह हाल जब राजा प्रह्लाद व महेन्द्रको ज्ञात हुआ तो उनको भी बहुत दु:ख हुआ। दोनों ओरसे चारों तरफ़ सुन्दरी तथा वायुकुमारकी खोजमें दूत भेजे गये। एक दूत हनूरुह द्वीपमें राजा प्रतिसूर्यके पास भी पहुँचा और कुमारका सब हाल सुनाया। यह हाल जब अञ्जनाको मा-लूम हुआ तो वह दु:खित होकर मूर्छित हो गई। प्रतिसूर्य उसको समझाकर आदित्यपुर आये तथा राजा प्रह्लादको भी समझाकर दोनों कुमारकी खोजमें निकले। बहुत जङ्गलों अम्बरोंकी खोजके पश्चात् एक महान्धकारसे परिपूर्ण भया-

मक्त जङ्गलमें दोनों राजाओंने वायुकुमारको जिनके शरीरमें सिवा पञ्जरके कुछ भी नहीं रह गया है, ध्यानमें मग्न हुए बैठे देखा। राजा प्रह्लादने प्यारे पुत्रको हृदयसे लगा लिया और अञ्जना सुन्दरीके मिलनेका तथा तेजस्वी पुत्र रत्नके उत्पन्न होनेका समाचार कह सुनाया। यह समाचार सुन कर कुमार एकदम, "प्यारी! प्यारी!! प्यारी!!!" कहके चिल्ला उठे। जब ध्यान टूटा सामने पिता आदिक मान्यजनों को देखकर लज्जावश मस्तक झुकाके रह गये।

उस निर्जन जङ्गलसे सब लोग शीघ्रही हनूरुहद्वीप बिदा हुए। वहाँ वायुकुमारकी प्यारी पतिव्रता अर्द्धाङ्गिनी अञ्जनासुन्दरीसे भेंट हुई। दोनोंने परस्पर अपने दुःखोंको कहकर अपने अपने हृदयोंको शान्त किया तथा कुछ दिन वहाँही रहे। फिर आदित्यपुरमें आकर दोनों पति-पत्नी पुत्रसहित आनन्दसे समय व्यतीत करने लगे। फिर उन्होंने अपनी जीवनलीला अत्यन्त सुखों तथा राज-लक्ष्मीके साथ व्यतीत की। कहींपर प्रतिमाओंको धूपमें रखनेसे अञ्जनाको यह कष्ट हुआ था। यह प्रगटकर, इस चरित्र को पढ़कर प्रत्येक पाठक और पाठिकाके हृदयमें इस प्रश्नका उत्पन्न होना सम्भव हो सकता है कि इतने बड़े राजकुलमें जन्म लेनेवाली तथा एक महान् वंशमें उत्पन्न हुए राजकुमार वायुकुमारकी सहचारिणी (वधू) राजकुमारी अञ्जना सुन्दरी को ऐसे अवर्णनीय दुःखोंका सामना किस कारणसे करना

पड़ा! इस प्रश्नका उत्तर सरल है और अत्यन्त सरल है। इस बातको माननेमें सर्वसाधारण सहमत है कि पूर्व जन्ममें उपार्जन किये हुए शुभाशुभ कर्मोंका फल सबहीको अवश्य भोगनाही पड़ता है इतर मनुष्योंकी कथा तो दूरही रही पर स्वयम् तीर्थङ्कर भी इन कर्मोंकी विडम्बनाओंसे नहीं बचे। पुराणोंका स्वाध्याय करनेवाले पाठकोंसे यह छिपा नहीं होगा कि परमपूज्य आदि नाथ भगवान्को भी असाता वेदनीय कर्मके उदयसे छ: महीनों तक आहार नहीं मिला था। तो राजकुमारी अञ्जना सुन्दरीको उन्हीं कर्मोंके जालमें फँस कर इतनी वेदना और यातनाको सहन करना पड़ा इसमें कोई आश्चर्य नहीं इसकी कथा इस प्रकार है कि अपने पूर्वजन्ममें अञ्जना सुन्दरी किसी राजाकी पटरानी थीं। उस राजाके यहाँ अञ्जनाके अतिरिक्त और भी रानियाँ थीं। पर इनको अपने पदका बड़ा अभिमान था किसी कारणसे अञ्जनामें और एक सपत्नी (सौत)रानीमें ईर्षा हो गई। बस इसी ईर्षावश होकर तथा अपने पटरानी पदके अभिमानसे अञ्जनाने जिनेन्द्र भगवान्के प्रतिबिम्बको मंदिरके समीप किसी बावड़ीके जलमें फिकवा दिया था और वह प्रतिमा बाईस घड़ी उस बावड़ीके जलमें पड़ी रही जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमाका इतना अनादर करनेसे अञ्जनाने अशुभ कर्मका बन्ध किया तथा इस कर्मके उदयसे इस जन्ममें बाईस वर्ष तक पतिका वियोग सहना पड़ा। माता पिता द्वारा अनादर पाया। सास और बहु-

रके घरमें निवास करने तकको आश्रय नहीं मिला। सहायताकी याचना करनेपर भी परिवारके लोगोंने तथा अन्य सम्बन्धियोंने भी तनिकसी सहायता नहीं दी। नगरके लोगोंसे बुरी दृष्टिसे देखी गई और जिसने सुना उसीने निंदा की। जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमामात्रका अनादर करनेसे अञ्जनाको इतना दुःख सहन करना पड़ा फिर जो पापात्मा जिन-शासनकी अवज्ञा करेंगे उन्हें नहीं मालूम नरकोंमें कैसे कैसे दुःख सहने पड़ेंगे। यही क्यों ऐसी बातोंके शास्त्रोंमें अनेक उदाहरण भरे हैं पर उन सबके निदर्शन करानेकी आवश्यकता नहीं। सबके लिये यही उदाहरण काफी होगा कि जिन शासनकी सच्ची प्रभावना करनेवाले एक ध्यानस्थ दिगम्बर मुनिके गलेमें राजा श्रेणिकने अज्ञानवश मरा हुआ सर्प डाल दिया था इसी कारणसे राजा श्रेणिकने सातवें नर्कका बन्ध किया था।

हमारे पाठकगण इस चरितसे केवल यही शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकते कि अभिमानका फल क्या हो सकता है एवं जिन शासनकी अवज्ञाका फल क्या होता है किन्तु हम इस चरितसे नहीं नहीं चरितके एक एक अक्षरसे अच्छीसे अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हमें यह चरित बतलाता है कि मानवजन्मकी उपयोगिता और कर्त्तव्य क्या है? यह चरित मनुष्यके आलस्यको छुड़ाकर कर्मवीर बना सकता है। इस चरितसे आत्मकल्याणके अभिलाषी

मनुष्य आत्मकल्याण कर सकते हैं और लोगोंमें ख्यातिके चाहनेवावाले नर ख्यातिलाभ कर सकते हैं। विपत्तिमें साहसहीन न होना एकबार कार्यमें सफलता प्राप्त न करनेपर भी कार्यमें तत्पर रहना, इस बातकी शिक्षा हमें इसी चरित-से मिल सकती है। कर्मों का खेल,मनुष्य स्वभावकी परिस्थिति, पातिव्रत्यकी रक्षा और एक अबलाका साहस इस चरितमें मिल सकता है।

चतुर स्त्रियाँ इस चरित्रके अनुशीलन करनेसे मानव जन्म को सफलकर सकती हैं और उसी पदको पा सकती हैं जिस पदको कि सीतादिकने प्राप्त किया है। हमें आशा और विश्वास होता है कि ऐसे चरित्रोंका अगर हमारे समाजकी अबलाओंपर अच्छा प्रभाव पड़े और वे इनसे थोड़ी भी शिक्षा ग्रहण करें तो वे संसारका उद्धार करनेवाली देवियाँ कह-लावेंगी। और अपने चरितसे संसारको चकित करेंगी। हमें सच्चा भरोसा है कि जिस दिन हमारे यहाँका अबलासमाज ऐसे ऐसे चरित्रोंका अनुशीलन और मनन करेगा उसी दिन जैन समाजकाही नहीं किन्तु समस्त संसारका एक नवीन जीवनप्रभातका उदय होगा और उन्नतिके युगका प्रारम्भ होगा।

महिलाकुलभूषण
श्रीमती मनोरमा देवी।

मनोरमा देवी धन-धान्यसे परिपूर्ण भारतवर्ष की प्रख्यात नगरी उज्जैनके सुप्रसिद्ध सेठ महीदत्तकी कन्या थीं। इकलौती कन्या होनेसे माता-पिताका इनके ऊपर असीम प्रेम था। ८ वर्षकी अवस्था होने पर ये संसारसे विरक्त एक जैनसाधुनी (जिसे अर्जिका कहते हैं) के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजी गईं। गृहकार्यकी सम्पूर्ण शिक्षा से दीक्षित होनेपर अर्जिकाने अन्तिम बार पातिव्रतधर्मका एक व्रत देकर कि "मन-वचन-काय से अपने पतिके सिवाय किसी अन्य पुरुषको अधर्मकी दृष्टिसे नहीं देखना" तथा इसके पालनेकी प्रतिज्ञा लेकर कुमारीको पिता-माताके यहाँ भेज दिया। १६ वर्षकी आयु होनेपर कुमारीकी यौवनावस्था-को विचारकर सेठ महीदत्तने अपने पुरोहितको बुलाया और उसके हाथमें टीकेके लिए बहुमूल्य मोतियोंका हारदे कुमारी के योग्य वरकी खोजमें भेजा। पुरोहितजी वरकी तलाशमें

फिरते २ कौशल प्रदेशके वैजयंती नगरमें पहुँचे। वहाँ के महामान्य सेठ महीपाल जौहरीके सुपुत्र कुमार सुखानन्दको गुण-अवस्था आदिमें कुमारीके योग्य वर समझ उन्हें हार व श्रीफल देकर सम्बन्ध निश्चित कर वापिस उज्जैनमें आये। तथा सुखानन्द कुमारकी यथायोग्य प्रशंसा सेठ महीदत्तसे कर संबन्ध निश्चित होनेका समाचार सुनाया। शुभतिथि पर मनोरमा देवी और कुमार सुखानन्दका विवाहसम्बन्ध होगया और कुमारी अपने पतिके यहाँ जाकर गृहकार्यमें प्रवृत्त हुई।

कुछ समय सुखसे रहनेके पश्चात् एक दिन रात्रिके समय जब सुखानन्द कुमार अपनी कोमल शय्यापर विश्राम ले रहे थे कि अचानक नींद खुल गई और सोचने लगे कि मैं बिना उद्योग के पिता की उत्पन्न की हुई सम्पत्तिसे आनन्द करता हूँ। मेरी अवस्था भी अब उद्योग करने योग्य हो गई है। इसलिये अब मुझे व्यापारमें प्रवृत्त होकर सम्पत्ति पैदा करना चाहिये। उन्होंने अपना यह विचार तत्काल अपनी प्यारी अर्द्धाङ्गिनीको भी निद्रासे सचेत कर सुना दिया। मनोरमाने अपने स्वामीके इन उत्कृष्ट विचारों की प्रशंसा की तथा घरही पर रहकर व्यापार करने का परामर्श दिया। परन्तु सुखानन्द कुमारने अनेक कारणोंसे घर पर ही रहकर व्यापार करना पसन्द न कर विदेशमें अधिक सफलता समझ विदेशही जानेका निश्चय किया।

मनोरमाको यद्यपि पतिसे बिछोह होनेका दुःख अधिक हुआ तब भी उसने कुमारको यथायोग्य वैदेशिक शिक्षाएँ देकर खुशीसे विदेश जाकर व्यापारमें सफलता प्राप्त करने की राय दी। प्रातः काल होते २ कुमारने यह अपना विचार अपने पूज्य पिताजीसे भी निवेदन किया और जाने की आज्ञा माँगी। पिताने भी कई तरह की युक्तियाँ समझाकर इन्हें व्यापार के लिये जानेकी आज्ञा दी और कुमार स्थल-जल मार्ग से द्वीपान्तरोंमें व्यापारके निमित्त प्रस्थान कर गये।

कुमारी मनोरमा देवी अपने स्वामी सुखानन्दको किसी तरहकी तकलीफोंका साम्हना न करना पड़े तथा व्यापारमें अधिक सफलता हो इसलिये परब्रह्म परमात्माका ध्यान किया करतीं थीं। एक दिन जब कि कुमारी प्रातःकालकी क्रिया से निवृत्त हो स्नानकर अपने प्रासाद की छतपर खड़ी अपने केशोंको खोलकर सुखा रही थीं कि वहाँ का राजकुमार घोड़ेपर चढ़ा हुआ निकला। राजकुमारकी दृष्टि कुमारी पर पड़ी। उसके रूपलावण्यको देखकर राजकुमारको मनोजके शरोंका निशाना बनना पड़ा। राजकुमारने अपने महलोंमें जाकर १ दासीको बुलाया तथा हर तरहकी युक्ति समझाकर जिस प्रकार हो सके कुमारीको लाने के लिये भेजा। दासीने जाकर अपने बुद्धिप्रावल्यसे कुमारीके सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया। सुनकर

कुमारीने भयंकर रूप धारण किया, नेत्र रक्तवर्ण हो गये, हृदय रोमांचित होगया। उसने दासीको तथा राजकुमारको खूब फटकारा। तथा इसको महलोंसे निकाल बाहर किया। दासी अपनेको अपमानित समझ इसका बदला लेनेका विचार कर तुरन्त सुखानन्दजीकी माताके पास गई और उन्हें कुमारीके विरुद्ध इस तरह भड़काया कि तुम्हारा पुत्र तो द्वीपान्तरमें रोज़गार करने गया है परन्तु तुम्हारी पुत्रवधू नित्य राजकुमार के महलोंमें जाती है। सेठानीजीको यह समाचार सुनने से अत्यन्त खेद हुआ। उन्हों ने इसकी छान बीन कुछ न कर अपने कुलमें कलंक लगता हुआ समझ चुपकेसे यह समाचार सेठजी से कह सुनाया और प्रस्ताव किया कि पुत्रवधूको माता पिताके यहाँ भेजनेका बहाना बतलाकर जंगलमें छुड़-वा देना चाहिये। सेठजी ने भी सेठानीजीकी बातोंपर विश्वासकर इस प्रस्तावका समर्थन किया और प्रस्तावानुसार मनोरमा जंगलमें छुड़वानेके लिये भेज दी गई।

अब उस सुशीला परम साध्वी सती मनोरमा को यह सब हाल उसके सारथी से ज्ञात हुआ जो उसे जंगलमें छोड़ने के लिये लिये जाता था तब उसे एकाएक मूर्छा आगई! मूर्छासे जाग्रत होनेपर फूट फूटकर रोने लगी। अपने परम प्यारे स्वामीका नाम उच्चारकर इस विपत्तिसागरसे उद्धार करनेके लिये उन्हें ज़ोर २ से पुकारने लगी। इस निराश्रित अबलाके मर्मभेदी विलाप के शब्दसे सारथीका

हृदय पानी २ होगया और उसने उसके कहे अनुसार उसके माता पिताके घर उज्जैन पहुँचादेनेकी प्रतिज्ञा की। उज्जैन पहुँचने पर सेठ महीदत्तने भी एकाएक पुत्रीके आनेसे संकल्प विकल्प कर उसे अपने घरमें रखनेकी अनिच्छा प्रकट की। तब सारथीने निराश होकर बिलखती हुई मनोरमासुन्दरीको एक सघन जंगलमें छोड़कर वैजयंती नगरका रास्ता लिया।

कुमारी अपने भाग्यको धिक्कारती हुई वनस्पतियोंसे अपने जीवनके दिन निर्वाह करने लगी। कभी अपने पति-वियोगके दुःखोंपर, कभी कलंकके पातकपर, कभी पूर्वोपार्जित कर्म्मों पर फूट २ कर रोने लगती थी। परन्तु उसके कर्मोंने उसे अभीतक नहीं छोड़ा और सहसा एक विपत्तिका पहाड़ और उसके ऊपर डाल दिया। जिसका वर्णन इस प्रकार है—

सुन्दरी एक वृक्षकी छायामें बैठी हुई अपने हृदयसर्वस्व स्वामी सुखानन्द के ध्यानमें मग्न थी कि वहाँ से राजगृहीका राजकुमार वनक्रीड़ा करता हुआ आ निकला। यह भी सुन्दरीके रूप और यौवन पर आसक्त हो गया और सुन्दरी को अपने नगरमें लेजाकर एक मनोज्ञ महलमें रखा। सुन्दरी का जीवनाकाश कठोर कष्ट मेघदलोंसे आच्छन्न हो गया अब उसे सिवाय एक ईश्वरके और किसीका आधार नहीं रहा। उसने हृदयमें ईश्वरका ध्यान कर प्रार्थना की कि हे जगदाधार! चिदानन्द दीनबन्धु दीनानाथ परमेश्वर!

आज मेरा सर्वस्व लुटा जा रहा है। मेरा सतीत्व भ्रष्ट करने के लिये यह नररूप राक्षस शीघ्र आनेवाला है। इसलिये शीघ्र मेरे सतीत्वकी रक्षा कीजिये !!! राजकुमार भी अपनी कुवासना को तृप्त करने के लिये शीघ्र आ पहुँचा। परन्तु शीलकी महिमासे देवशक्तिने प्रगट होकर राजकुमारको उठाकर गचपर पछाड़ दिया। वह मूर्छित हो गया।

मूर्छासे जागनेपर अपने किये पर बहुत पछतावा करने लगा। तथा इसके प्रायश्चित्तके लिये कुमारीसे हाथ जोड़ कर क्षमा की प्रार्थना की—कुमारी की आज्ञानुसार राजकुमारने उसको उसी स्थानपर छोड़ दिया जिस स्थानसे कि वह उसे लाया था। इस तरह कुमारी ईश्वरका शतशः धन्यवाद देती हुई उसी भयानक जंगलमें आई और फिर अपने जीवनके दिन व्यतीत करने लगी। भाग्यवशात् उस जंगलसे काशीका धनिक सेठ धनदत्त व्यापार करता हुआ निकला। कुमारीका रोदन सुन उसे विपत्तसागरमें फँसा देख सेठजीने उससे उसका सब हाल पूछा। कुमारीने अपनी आरम्भसे अन्त तक की सब दुःखमय कहानी सुनाई। सेठ धनदत्तने उसपर बहुत दुःख प्रगट किया तथा कुमारी को अपनी भाञ्जी बतलाकर अपने घर काशीको ले गया तथा उसे सुखपूर्वक रक्खा।

यहाँ सुखानन्द कुमार जब व्यापारमें अपनी विलक्षण बुद्धिसे आशातीत सफलता प्राप्त कर अपनी जन्मभूमि वैजयंती

नगरको लौटे आरहे थे तब नगरसे थोड़ी दूर पर उनको अपनी प्राणप्यारी सहधर्म्मिणी के झूठ कलंकित होकर निकाले जानेका दुःखद समाचार मिला। समाचार सुननेसे इनको मूर्च्छा आ गई। जाग्रत होनेपर अपना सब सामान पिताजीकी सेवामें समर्पण करने के लिये अपने साथियोंको सौंपकर योगीका भेष रखकर ये अपनी गृह-लक्ष्मीकी खोजमें निकले। खोजते २ ये राजगृही नगरीमें पहुँचे। जब वहाँ भी निराश होना पड़ा तब फिर जंगल २ भटकते फिरते कई महीनोंका वियोग रूपी दुःख तथा बनवासके क्लेश सहते हुए काशीमें पहुँचे और अपनी सह-धर्म्मिणीसे मिलकर वहां कुछ दिन सुखसे रहे।

जब वैजयन्ती नगरके राजाको सुन्दरी मनोरमाके कल-ङ्कित होकर अन्यत्र जङ्गलमें भेजे जानेका तथा कुमार सुखा-नन्दका उसकी खोजमें जङ्गल जङ्गल भटकते फिरनेका हाल ज्ञात हुआ तब उन्होंने तुरन्त सेठ महापालको बुलाकर उन दोनोंके खोजनेके लिये अनुरोध किया। तदनुसार शीघ्र सेठजीने चारों तरफ़ अपने अनुचर भेजे तथा आप स्वयं भी पुत्र व पुत्र वधू की खोजमें निकले। खोजते खोजते ये भी काशीमें पहुँच पुत्र व पुत्र वधूको देख आनन्दसागरमें मग्न हो गये और उनको लेकर शीघ्र वैजयन्तीनगरको चल दिये। मनो-रमा सुन्दरीको अपने कलङ्कका बहुतही दुःख था, इसलिये उसने इसके इन्साफ बग़ैर नगरमें प्रवेश करनेसे इनकार किया

यह इन्साफ राजाने खुद अपने हाथमें लिया और तिथि दूसरे दिनको नियत कर दी। पुण्यका प्रताप बड़ा प्रबल होता है। इस बीचमें रात्रिको जो लीला हुई वह अलौकिक है। मानो देवशक्ति पतिव्रता स्त्रियोंका न्याय राजासे होना अयोग्य समझ खुद न्याय करनेके लिये इस मृत्युलोकमें अवतीर्ण हुई। रात्रिको नगरके चारों ओरकी शहरदीवारीके सब बड़े बड़े फाटक बन्द हो गये और राजाको स्वप्न हुआ कि नगरके सब फाटक बन्द करदिये गये हैं। पतिव्रता स्त्रीके चरण-स्पर्श मात्रसेही वे खुल सकेंगे।" प्रातःकालही राजाको नगरके फाटक बन्द होनेका समाचार मिला। राजा को शीघ्रही अपने स्वप्नकी बात याद आई और उन्होंने मौकेपर स्वतः जाकर नगरकी कुल स्त्रियोंको क्रमशः दरवाज़ेपर चरण स्पर्श करते हुए चले जानेकी आज्ञा दी।

नगरकी छोटीसे छोटी स्त्रीसे लगाकर राजमहिषी तकके चरणोंका स्पर्श दरवाज़ेसे होगया परन्तु दरवाजा नहीं खुला। तब सब भेद समझकर राजाने आकर मनोरमा देवीकी शरणमें सब समाचार कहकर प्रार्थना की कि हे! नारीकुलरत्न महापतिव्रता मनोरमा! चलकर अपने चरणकमलोंके स्पर्शसे दरवाज़ेको खोलो और अपनी कीर्त्तिरूपी विजयवैजयन्तीको सारे भूमण्डलमें उड़ाकर स्त्रियोंकी लाज रक्खो। मनहोमा सुन्दरी दरवाज़ेपर गई और परमात्माका ध्यान रखकर दर-वाज़ेसे चरण स्पर्श किया कि उसी समय मेघकी सी गड़-

गड़गड़ाहट करता हुआ दरवाज़ा खुल गया। मनोरमा देवीके पातिव्रतकी कीर्त्तिकौमुदी सारी दुनियाँमें फैल गयी। जिसे आज कई हज़ार वर्षोंके व्यतीत होनेपर हमलोग सुनकर अपनेको कृतार्थ समझते हैं तथा उस सरलासाध्वी जगत्पूज्या महिलाकुलकमलचूड़ामणि मनोरमा देवीकी सहस्र मुखसे मुक्तकण्ठ होकर बारम्बार प्रशंसा करते हैं।

मनोरमा देवी अपने राजप्रासादोंको भी नीचे दिखाने वाले गगनचुम्बी महलोंमें आकर आनंदसे पतिसेवामें मग्न हुई। दोनों दम्पतिने फिर सुखसे संसारयात्राको पूर्णकर हमको अपना आदर्श बतलाकर अनन्तधामका मार्ग लिया।

धर्मकी महिमासे कठिनतर कार्य्य भी सुलभ होजाते हैं। अन्तमें धर्म्म हीकी जय होती! धर्म्मके प्रभावसे मनोरमाने शीलकी सारी पुनः धारण की और व्यर्थ अपवाद लगानेवालोंका मस्तक नीचा किया।

नारीका भूषण शील ही है। इसीसे उनकी शोभा है शीलवती नारी जिस घरमें रहती है वहां सूतक पातक कभी नहीं होता है और जहां कुलटा रहती हैं वहां दिन रात सूतक पातक रहता है, ऐसा जिन शासनका वचन है। शीलहीसे शिवपदकी प्राप्ति होती है, इन्द्र अहमिन्द्र आदिके पद भी इसीके सेवनसे मिलते हैं शीलवतीकी विपत्तिकी घड़ी भी सुलभतासे कट जाती है और पग पगमें सुख ही सुख मिलता है।

संसारमें शीलकी महिमा अपरम्पार है। यही सार है और इसीसे भवसागर का बेड़ा पार है। शील और पतिव्रत धर्म्म पालनेका प्रत्यक्ष फल इससे बढ़कर और क्या होगा कि स्वर्गके देवोंने भी मनोरमाकी सहायता की। इसलिये जगत्‌मात्र के नरनारीको शीलव्रत धारण करना उचित है।

वह दिन कैसे महत्वका होगा जिस दिनको भारतकी गौरव लक्ष्मीको फिरसे प्राप्त करनेके लिये मनोरमा सुन्दरी जैसी गृहलक्ष्मी आकर भारतके हरेक गृहस्थके घरमें जन्म लेंगी। उस दिनकी प्रसंशा नहीं की जा सकती। हम परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि हमें उस दिनके शीघ्र दर्शन हों और ऐसी ही पतिव्रता हमारे गृहोंको अपनी चरणरजसे पवित्र करें।

८

दृढ़व्रती
श्रीमती रानी रयनमंजूषा।

रानी रयनमञ्जूषा हंसद्वीपके सम्राट् कनककेतुकी कन्या थीं। इनके चित्र विचित्र नामक दो भाई भी थे। राजकुमारी रयनमञ्जूषाका बाल्यावस्थाका सौन्दर्य अपूर्व था। छोटीही अवस्थासे इनके पठन-पाठनका योग्य प्रबन्ध किया गया जिससे थोड़ेही दिनोंमें ये स्त्रियोचित शिक्षासे परिपूर्ण हो गईं तथा अपनी बुद्धि और गुणोंसे पिता माताके चित्तमें असीम आह्लाद उत्पन्न करने लगीं। कुमारीकी यौवनावस्था समीप आई देख राजाको इनके पाणिग्रहणकी चिन्ता हुई। एक दिन राजा कनककेतु अद्वितीय गुणोंसे विभूषित भविष्यद्वक्ता जैनमुनिके दर्शनोंको गये और उन्होंने पुत्रीके पाणिग्रहण विषयमें भी प्रश्न किया। विलक्षण योगी मुनि महाराजने कहा कि आपकी राजधानीमें सहस्रकूट नामका देवालय है उसके किवाड़ अत्यन्त भयङ्कर और मजबूत हैं। महापराक्रमी योद्धाके सिवा उन्हें कोई खोल नहीं

सकता है। जो वीर पुरुष उनको खोलेगा वही रयन मञ्जूषाका पाणिग्रहण करेगा। राजधानीमें आकर राजाने सहस्रकूट देवालयपर पहरा बैठा दिया और आज्ञा दी कि जो व्यक्ति इसके किवाड़ोंको खोले तुरत हमको उसका समाचार दिया जावे।

सुप्रसिद्ध चम्पापुरीका राजा श्रीपाल जो कुष्टरोगसे पीड़ित हो अपनी राजधानीसे निकल जङ्गल जङ्गल फिरता था पुण्योदयसे अचानक उसे सती साध्वी महापतिव्रता राजकुमारी मैनासुन्दरी समान पत्नीको प्राप्ति हुई। जिसके उद्योगसे उसका शरीर कुष्ट रोगसे निर्मुक्त होकर बहुत सुन्दर हो गया। अपनी प्यारी स्त्रीसे देश पर्यटनके लिये बिदा होकर कौशाम्बीपुरके प्रसिद्ध व्यापारी धवल सेठके साथ अपनेको गुप्त रखे हुए साधारणजनके समान राजा श्रीपाल घूमता घूमता हंसद्वीपकी राजधानीमें आ पहुँचा। यह जैनधर्मका पक्का श्रद्धालु था। इसलिये श्री वीतराग परमेश्वरके दर्शनोंकी खोजमें शहरमें निकला। खोजते खोजते यह उसी सहस्रकूट चैत्यालयके पास आ पहुँचा जिसके किवाड़ किसीसे खुलते भी नहीं थे। राजा श्रीपालको दर्शनोंकी बड़ी उत्कण्ठा थी इसलिये उन्होंने ईश्वरका नाम स्मरण करके किवाड़में पूर्णबलके साथ धक्का दिया। कर्णभेदी शब्दके साथ किवाड़ खुल गये और मंदिरके भीतर प्रवेश कर भक्तिभावसे श्रीभगवानके दर्शन कर अपने नेत्रोंको शान्त

किया। इधर किवाड़ खुलनेकी आवाज़से पहरेदारोंमें कोला-हल मच गया। शीघ्रही महाराजको शुभसमाचार सुनाया गया। राजाने अपनी कन्याके योग्य वरकी अनायास प्राप्तिसे अत्यन्त आनंद मनाया तथा शुभ तिथिमें रयनमञ्जूषाका विवाह राजा श्रीपालके साथ करदिया। राजा श्रीपाल कुछ दिन अपनी नवीन ससुरालमें अत्यन्त सुखके साथ रहे। परन्तु जब व्यापारी धनकुबेर धवल सेठ अपने व्यापारको समाप्तिकर हंस-द्वीपसे विदा होने लगा तब राजा श्रीपालको भी अपने देश पर्यटनकी याद आई और वे जानेको उद्यत हुए। यद्यपि उन्होंने राजकुमारी रयनमञ्जूषाको विदेशके क्लेशोंको भयानक रूपसे बतलाकर उसको राजप्रासादोंमें रहनेकाही अनुरोध किया परन्तु कुमारीने पतिवियोगके दुःखोंके सहन करनेके लिये अपनेको असमर्थ बतलाकर तथा पतिकी सेवाही अपना श्रेष्ठ धर्म समझकर पतिके साथ रहनाही श्रेष्ठ समझा और साथ चलनेको उद्यत हुई अन्तमें राजा श्रीपाल और रानी रयनमञ्जूषा दोनों प्रतापी धवलके जहाज़में बैठकर विदेशको प्रस्थानित हुए।

अथाह समुद्रके पृष्ठ भागपर लक्ष्मीवान् धवल सेठका जहाज़ वायुवेगसे चला जा रहा है। ऊपर आकाश और नीचे पानीके चारों ओर कुछ भी दिखाई नहीं देता है। जहाज़परके सब यात्री अपने अपने कार्यमें मग्न हैं कि—यकायक धवल सेठकी कुटिल दृष्टि सुकुमारी राजकुमारी

रयनमञ्जूषापर पड़ी। रयनमञ्जूषाके रूप, यौवन, कोमलता आदि सराहनीय गुणोंको देखकर धवल सेठको कामदेवके तीक्ष्ण शरोंका निशाना बनना पड़ा। उसकी बुद्धि नष्ट हो गई और कुवासनाने उसके हृदयपर अपना पूर्ण आधिपत्य जमा लिया और उसकी इच्छाको पूर्त्तिके लिये वह प्रयत्न सोचने लगा। उसने विचार किया कि अगर श्रीपालको इस पर्य्यायसे मुक्त कर दूँ तो रयनमञ्जूषा मेरे हाथ आ सकती है। इस कुटिल विचारको कार्य्य रूपमें परिणत करनेके लिये उस नष्टबुद्धि दुराचारी धवल सेठने शीघ्र ही राजा श्रीपालको समुद्रमें गिरवा दिया और कृत्रिम दुःख प्रकाशित करने लगा। राजा श्रीपाल सब कारण समझ स्थिर चित्तसे परमेश्वरका नाम स्मरण करने लगे। सौभाग्यसे कुछ देरके पश्चात् उन्हें एक काठका तख्ता बहता हुआ मिल गया। उसीपर वह बैठ गये। अपने जीवनके बचनेकी आशा समझकर उन्होंने चिदानंद अविनाशी परब्रह्मपरमात्माको कोटिशः धन्यवाद दिया और उन्हींका स्मरण करते हुए बहते चले गये।

यहाँ जब कोमल चित्त सुशीला राजकुमारी रयनमञ्जूषाको अपने पतिके समुद्रमें गिरनेका हाल ज्ञात हुआ वह तुरत मूर्छित होकर गिर पड़ी। उसके दुःखका पारावार नहीं रहा। जो राजकुमारी अपने पतिके थोड़े दिनोंके विछोहके दुःखोंको भी सहनेमें असमर्थ थी उसे अपने स्वामीका इस जन्म भरके लिये विछोह हुआ है। कहिये उसके

दुःखका अन्त कैसे हो सकता है। जिसका जीवनाधार समुद्रकी अविरल तरङ्गोंमें लुप्त हो गया है उसे धैर्य कैसे हो सकता है। रयनमञ्जूषा मूर्छासे सचेत होनेपर स्वामीका स्मरण कर फूट फूटकर रोने लगी। उसकी प्रतिध्वनिसे सारा जहाज़ काँप उठा। उसने भोजनादि त्याग दिया केवल स्वामीके नामकाही स्मरणकर अपने जीवनको व्यतीत करने लगी। अभी तक उस सरल साध्वी सुन्दरीको यह नहीं ज्ञात हुआ है कि यह कुकृत्य इसी नरपिशाच धवल सेठका है।

धवल सेठ अपने कार्यकी सिद्धिका समय निकट जान बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कुमारीको श्रीपालसे असन्तुष्ट कराकर अपने ऊपर प्रसन्न करानेके लिये एक दूतीको कुमारीके पास भेजा। दूतीने कई चालोंसे कुमारी को समझाया परन्तु कुमारी तो महापतिव्रता पत्नी थी वह कैसे अपने स्थिर न्यायमार्गके कृत्योंके विरुद्ध कार्य करसक्ती थी। उसने दूतीको खूब धमकाया। जब धवल सेठने दूती से अपनी कार्य की सिद्धि होना असंभव समझा तब वह स्वयं कुमारीकी सेवामें आकर प्रार्थना करने लगा कि तुम्हारा पति तो अब परलोक चला गया है तथा तुम्हारी इस समय किशोरावस्था है। तुम अपने वैधव्यका किस तरह निर्वाह कर सकोगी। तुम्हारा पति श्रीपाल मेरे पास ही नौकर था। तुमको चाहिये कि मेरे ऊपर प्रसन्न होकर इच्छित सुखोंको भोगो इत्यादि २ उसने अपनी प्रशंसा की बहुतसी बातें

कहीं। परन्तु जब रयनमंजूषाने उस दुष्टकी एक भी बातपर ध्यान नहीं दिया तब यह बलात्कार उसका सतीत्व भंग करने के लिये उद्यत हुआ। उस महापतिव्रता अबला राजकुमारी रयनमंजूषाने अपना सर्वस्व खोया समझ और सिवाय उस चिदानंद अनन्तशक्तिवान् परमात्माके कोई इस दुःख से छुटकारा करनेवाला न जान प्रार्थना करने लगी— कि हे प्रभो! यह नीच मुझ अबलाका सर्वस्व हरण करने के लिये उद्यत हुआ है। शीघ्र मेरी रक्षा कीजिये। अबला के सतीत्वकी रक्षाके लिये शीघ्र देवशक्तिने प्रगट होकर अपनी अखंड शक्तिसे धवल सेठको मूर्च्छित कर दिया और उसे अनेक प्रकारके दुःख देकर अपने कियेका पूर्ण फल दिया। अब धवल सेठको ज्ञात हुआ कि पतिव्रता नारियोंमें कितनी शक्ति होती है और उनका तेज क्या नहीं कर सक्ता है। उसने अपने दुःष्कृत्योंके प्रायश्चित के लिये परमेश्वरकी स्तुति की और राजकुमारीसे भी क्षमा की प्रार्थना की। उस समय से धवल सेठकी बुद्धि ठीक हुई और फिर रयनमंजूषाको किसी तरह का मानसिक शारीरिक दुःख देने तक का उसने विचार भी नहीं किया।

यहाँ राजा श्रीपाल काठके तख्तेपर बैठे तैरते २ अपने पुण्यकर्मोंके प्रतापसे कुंकुमद्वीपके किनारे समुद्रसे पार हुए। किनारे पर वहाँ के राजाके बहुतसे कर्मचारी इसलिये पहरा दे रहे थे कि उन्हें ज्योतिषियोंसे मालूम हुआ था कि उसकी

राजकुमारी गुणमाला का पाणिग्रहण वही पुरुष करनेको समर्थ है जो समुद्रमें बाहु बलसे तैरता हुआ किनारे आवे-गा। तदनुसार कर्मचारियोंने राजा श्रीपालको आदर सत्-कार से लेकर राजाके निकट उपस्थित किया। राजाने प्रसन्न होकर अपनी प्यारी पुत्रीका विवाह श्रीपालसे कर दिया और श्रीपाल अपने भाग्य के चमत्कार पर आश्चर्य करते हुए नववधूके साथ आनन्द पूर्वक रहने लगे।

धवल सेठका जहाज़ भी समुद्रको लाँघता हुआ इसी कुंकुमद्वीपके किनारे आया। सेठने राजाकी भेंटके लिये अनुपम वस्तुओंको लेकर राज-सभाकी ओर गमन किया। जब श्रीपालको राजसभामें उच्चासन पर प्रतिष्ठित हुए देखा तो सेठके होश उड़ गये। वह शीघ्र राजासे भेंट कर बिदा होने लगा। बिचारा कि श्रीपाल मुझसे अवश्य बदला लेगा। इसका राजाके यहाँ मान है इसलिये चाहे जो कुछ करा सकता है। अतः इसकी प्रतिष्ठाको नष्ट करना चाहिये। सोच समझकर उसने भाटोंको बुलवाया कार्यसिद्धिपर उन्हें बहुतसे रुपये देनेका वादा कर बिदा किया और राजसभामें जाकर श्रीपालको अपना संबन्धी पुकारकर उसे भाट सिद्ध करने के लिये कहा। तथा भाट लोगोंकी बुद्धि चंचल होती ही है उन्होंने राजसभामें जाकर किसीने श्रीपाल को अपना पुत्र किसीने भतीजा किसीने भाई आदि संबन्ध-शब्दोंसे संबोधन किया। राजाको शीघ्र भ्रम होगया कि

श्रीपाल जातका भाट है। अपनी जातिका खोपकर इसने मेरी पुत्री का पाणिग्रहण किया है। राजा बहुत रुष्ट हो गया और उसने श्रीपालको सूलीदंड की आज्ञा दी। श्रीपाल महायोधा थे वे इस नाटक का अन्तिम दृश्य देखना चाहते थे इसलिये उन्होंने इस विषयमें कुछ नहीं कहा परन्तु जब उसकी प्यारी पत्नी गुणमाला इससे भयभीत हो उनके चरणोंपर गिरकर उनसे जाति आदिके विषयमें प्रश्न कर उत्तर की इच्छा करने लगी तो उन्होंने समझाकर कहा कि समुद्रके किनारे पर एक व्यापारी जहाज़ ठहरा हुआ है उसमें रयनमंजूषा नामक एक राजकुमारी होगी उससे मेरा सब हाल पूंछना। वह विस्तार सहित तुम्हारी सब शंकाओं का समाधान करेगी। तदनुसार राजकुमारी गुणमालाने जाकर कुमारी रयनमंजूषासे महाराज श्रीपालका सब वर्णन तथा धवल सेठ की कुटिलता की सब कथा सुनी। परस्पर वार्तालाप करती हुई दोनों कुमारी राजा के समीप आईं और यथार्थ हाल समझाकर राजा श्रीपालको बन्धनसे मुक्त कराया। धवलसेठकी सम्पूर्ण कुटिलता प्रकाशित हो गई और उसके किये अनुसार राजा ने उसे अत्यन्त कठोर दंड देने की इच्छा प्रगट की। परन्तु शुद्धचित्त दयालु राजा श्रीपालने जब अपने ही कारणसे धवल सेठ का सर्वस्व नाश होता देखा तो उसको क्षमा कर दिया।

इस तरह राजा श्रीपाल राजकुमारी रयनमंजूषा को

साथ लिये हुए कई देशोंका पर्यटन करते हुए उज्जैन आकर रानी मैनासुन्दरीको ले अत्यन्त विभूतिके साथ चम्पापुर अपनी पुरानी राजधानीमें आकर आनन्द से रहने लगे। बहुत समय सुखके साथ रहने के पश्चात् एकदिन मेघपटलों को छिन्न भिन्न होते देख राजाको वैराग्य हो गया और वे दीक्षा लेकर जङ्गलोंमें तप करने के लिये चले गये।

इधर जब रयनमंजूषाने देखा कि हमारे पतिदेवने सर्वकल्याणकारी जैनेन्द्री दीक्षा धारण करली है तो अब पतिके बिना संसारमें नारियों का रहना व सांसारिक सुखों का भोग करना किस कामका? ऐसा विचार कर पूर्व घटनाओंके स्मरण होने से संसारका असार स्वरूप जान किसी अर्जिकाके समीप आकर दीक्षा ग्रहण की और श्रावकोंके पञ्चअणुव्रत, चार शिक्षाव्रत तथा तीन गुणव्रत इस प्रकार द्वादश व्रतोंका बड़ी योग्यतासे अतीचार और अनाचार रहित पालन किया। अनित्य अशरणादि द्वादश भावनाओं की भावना करके क्षुधा-तृषा इत्यादि परीषहों को भली भाँति सहन करने लगी एवम् निरन्तर हो अपने समय को स्वाध्यायादि में बिताने लगी। क्रमशः एकादश प्रतिमाओं को धारण कर कर्मों की निर्जरा की और अन्तमें समाधि मरण द्वारा आत्मोत्सर्ग किया और स्वर्गलक्ष्मीको प्राप्त किया।

हमारे वाचकों ने इस चरित्रको पढ़कर संसारकी अनित्यका उदाहरण भली भाँति जाना होगा। इस चरितसे

पाठकोंको इसका ज्ञान अवश्य हुआ होगा कि सज्जन कैसी ही दशामें क्यों न हों एवं दुष्ट लोग सज्जनसे चरमसीमा की दुष्टता भी करें पर वे अपनी सज्जनताका परित्याग कभी नहीं करते। पर यह बात अवश्य है कि सच्चे धर्म्मात्मा क्षुद्रों की क्षुद्रता से दुःखित कभी नहीं होते। यही कारण है कि दुष्टमति धवल सेठ के द्वारा कई बार घोर उपद्रव करने पर भी उसके दुष्कृत्योंका उसे बदला देने के लिये नीचों की तरह श्रीपालने नीच चेष्टा कभी नहीं की। श्रीपाल को मारने की चेष्टा की गई और उसका निरादर करानेके लिये भी धवल सेठने नीच उपायोंका अवलम्बन किया पर श्रीपाल जिनेन्द्र भगवान के शासनमें अटल और अचल श्रद्धा होने के कारण दुःख के अवसरोंपर भी असाधारण सुखोंको भोगा। सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात इस चरित्रमें रयनमंजूषाकी पतिभक्ति है। घोर आपत्ति आने पर और धवलसेठ की भयावनी विभीषिकाओं से भी पतिव्रता रयनमंजूषाका चित्त पतिभक्तिसे विचलित नहीं हुआ किन्तु पतिप्रेममें ही पगा रहा। क्या विचारशील पाठिका इस ओर ध्यान देंगी? मनुष्य-समाजकी उन्नतिके लिये इस बातकी आवश्यकता है और अत्यन्त आवश्यकता है कि पतिपत्नीका परस्परमें यथोचित प्रेम हो। पर खेद है कि शिक्षा न मिलनेके कारण हमारे स्त्री समाजमें पतिभक्ति या पतिप्रेमकी उतनी मात्रा नहीं है जितनी होनी चाहिये। मानव

समाजकी वास्तविक उन्नति में अन्य बाधाओंकी तरह स्त्री समाजका शिक्षित न होना उन्हें अपने कर्त्तव्योंका ज्ञान न होना यह भी एक प्रबल बाधा है। हम उस समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि जिस समय हमारे समाजमें रयनमंजूषा जैसी पतिपरायणा नारियाँ उत्पन्न हों और जातिको फिर भी एकबार अपने सत्कर्मों से उन्नतिशालिनी बनायें।

धन्य है यह भारतवर्ष! जहाँ ऐसी २ रमणीरत्न जन्म धारणकर इस भूमिको पवित्र कर गयी हैं। यद्यपि ऐसे उदाहरणोंसे भारतका सम्पूर्ण इतिहास भरा पड़ा है तथापि हमने कुछ आदर्श होने योग्य शीलवती, सतीत्वपरायणा नारियोंके चरित्रोंका यह सङ्ग्रह किया है। सुहृदय पाठक पाठिकाएँ इससे अवश्य शिक्षा ग्रहण करेंगी और उनका अनुकरण करेंगी यही आशा हृदयमें रख यह क्षुद्र लेखक सम्प्रति विदा होता है।

ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!